हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

वर्ष ५२

अंक ८ 'दीपावली' - अंक

* भ० धन्वन्तरि का भजन - पूजन
* कार्त्तिक - माहात्म्य एवं 'दीपावली'
* कामना - पूर्त्ति का सिद्ध प्रयोग
* श्रीशत्रु - विध्वंसिनी स्तोत्र
* श्रीललित - भैरव - कवच
* नीरोग - कारी आदित्य - हृदय
* श्रीमहा - मृत्युंजय स्तोत्र - विधान
* त्रिकाल - दर्शक गौरी - शिव मन्त्र
* श्रीधनदा देवी पटल

***

'दीपावली'
की
शुभ-कामनाएँ

मन्त्र-साधना के जिज्ञासुओं के लिये प्रामाणिक शोध-पूर्ण ग्रन्थ

मन्त्र-कोष

मन्त्रों का शोधात्मक संग्रह

[तीन खण्डों में]

• पञ्चायतन खण्ड •

• दश महा-विद्या खण्ड

• विविध मन्त्र संग्रह •

• वर्ण-बीज-कोष •

मूल्य ५५); सजिल्द मूल्य ६५)

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज—२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ६

वार्षिक शुल्क : रु० ६५
आजीवन शुल्क : रु० ६५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ६००/४००
आजीवन : ६०००/४०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट
कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम
से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद
के पते पर भेजें।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज—२११००६

सभी पाठक, सहायक एवं लेखक-बन्धुओं को
'नवरात्र' एवं 'दीपावली'-महोत्सव की शुभ-कामनाएँ

अरुण-कमल-संस्था, तद्-रजः-पुञ्ज-वर्णा,
कर-कमल-वराभयेति युग्माम्बुजा च।
मणि-कटक-विचित्रालंकृता कल्प-जालैः,
सकल-भुवन-माता सन्ततं श्री श्रियै नः ॥

सूर्योदय के समान अरुण - वर्ण के कमल-दल पर विराजमान, कमल-पराग के सदृश पीले-गुलाबी रङ्गवाली, वर और अभय-मुद्रा तथा दो हाथों में कमल-पुष्प-धारिणो, मणि-मय कङ्कणों से अलंकृत, विश्व-माता श्रीमहा-लक्ष्मी हमें सदैव श्री से सम्पन्न बनाएँ।

इस अंक में

○ भगवान् धन्वन्तरि का भजन-पूजन और व्रतोत्सवादि २२६
○ श्रीकार्त्तिक-माहात्म्य एवं दीपावली-महोत्सव ... २२९
○ 'मातृ'-चरण से लाभ ... २३२
○ 'श्रीत्रिशिरा देवी विधानम्'—एक समीक्षा ... २३३
○ 'मातृ'-भक्त पं० ईश्वरीदत्त मिश्र ... २३५
○ **साधन-माला** २३६-२५३
१२७ सभी कामनाओं की पूर्ति का सिद्ध प्रयोग
१२८-२९ श्री शत्रु-विध्वंसिनी स्तोत्र : दो अन्य प्रयोग
१३० श्री ललित-भैरव कवचम्
१३१ नीरोग-कारी आदित्य-हृदय
१३२ ऊर्ध्वाम्नायोक्त श्रीमहा-मृत्युञ्जय स्तोत्र-विधान
१३३ त्रिकाल-दर्शक गौरी-शिव-मन्त्र
१३४ श्रीधनदा देवी पटल
○ जिज्ञासु के पत्र ... २५४
○ श्रीभुवनेश्वरी-वन्दना ... २५६

भगवान् धन्वन्तरि
का
भजन-पूजन
और
व्रतोत्सादि

आयुर्वेद-पञ्चानन पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

विष्णु भगवान् के चौबीस अवतारों में से **श्री भगवान् धन्वन्तरि** बारहवें अवतार हैं। जब सृष्टि के लोगों और लोक-नायक देवताओं को अपने सृष्टि-सञ्चालन कार्य में कितने ही अभावों का बोध होने लगा, तब शत्रु को पराजित करने के लिए, शरीर को सुदृढ़ और अमर-अमर बनाने के लिए 'अमृत' जैसी वस्तु की खोज हुई। भगवान् विष्णु के उपदेश से देवताओं ने अपने प्रतिद्वन्द्वी दैत्यों के साथ सन्धि स्थापित की। देवताओं और दैत्यों ने **'क्षीर-सागर'** में वन-पर्वतों की समस्त लता, गुल्म और औषधियों को डालकर, सम्मिलित शक्ति से प्रयोग-पर-प्रयोग करना अर्थात् समुद्र का मथना आरम्भ किया। उन्होंने अपने प्रयोग-रूपी मन्थन की मथानी **मन्दराचल पर्वत** को निश्चय किया, परन्तु मन्दराचल पर्वत को देवता और दैत्य लाने में निराश हुए भगवान् विष्णु के उत्साह-दान से उसे लाने में वे समर्थ हुए, अर्थात् उसकी दिव्य औषधियाँ प्राप्त कर सके। देवताओं और दैत्यों के इस 'प्रयोग' में नागराज वासुकी भी सहायक बने। मन्थन-कार्य में जैसे रई—रज्जु का उपयोग होता है, उसी प्रकार उन्होंने इस कार्य में प्रधान भाग लिया। दैत्यों ने वासुकी-राज की पूँछ पकड़ कर मथना अर्थात् निम्न श्रेणी का कार्य करना अस्वीकार किया; किन्तु भगवान् की सम्मति से देवताओं ने निम्न श्रेणी के कार्य को स्वीकार किया और दैत्यों को वासुकी के मुख भाग को ग्रहण कराकर कार्य करना आरम्भ किया।

मन्दराचल-पर्वत का भार सँभालने के लिए भगवान् ने **द्वितीय अवतार कच्छप रूप** को धारण किया और इस प्रकार 'कच्छप'-यन्त्र द्वारा मन्थन—'प्रयोग' होने लग गया। सर्प-राज के मुख की झाग और मन्थनीय औषधियों के भयानक विष से सभी प्रयोग-कर्ताओं का शरीर काला और वर्ण-प्रभा-हीन

हो गया। जैसे विष-शोधन में पहले उसके जहरीले भाग ही निकलते हैं, उसी प्रकार इस 'प्रयोग' में भी पहले हलाहल विष की उत्पत्ति हुई। हलाहल से उस समय पृथ्वी हिलने लग गई। देवताओं की प्रार्थना से, रस-शास्त्र के प्रधानाचार्य महादेव जी ने 'विष'-सम्बन्धी प्रयोग का भार अपने ऊपर रखा। रस-तन्त्र के परमाचार्य भगवान् शिव माने जाते हैं और शोधित संखिया-सींगिया आदि विषौषधियाँ रस-तन्त्र-प्रयोग के कारण 'रोग'-नाश और 'प्रजा'-रक्षण में आज भी 'अमृत' का कार्य कर रही हैं। इस विष-प्रयोग में भगवान् शिव को बड़ी-बड़ी यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ीं। 'प्रयोग' में विष-पान करने के कारण उनका गला श्याम हो गया। उनके प्राण छटपटाने लगे। जगदम्बा के अनुग्रह से सब विघ्न दूर हुए। विष-बाधा से शिवजी का त्राण हुआ और वे **नील-कण्ठ भगवान्** कहलाए।

उक्त 'प्रयोग'-रूपी समुद्र-मन्थन में **'हलाहल-विष'** के बाद दूसरे रत्न के रूप में सुरभि गाय की उपलब्धि हुई। यह **सुरभि-गाय** बहुत ही दूध, घी देनेवाली थी। इसलिए, यज्ञ की हवि जुटाने के लिए, वह श्रेष्ठ समझी गई और ऋषियों को सौंपी गई। इसके बाद श्वेत रङ्ग के उच्चैःश्रवा जाति के उत्तम अश्व की प्राप्ति हुई, जो दैत्य-राज बलि की सेना में भरती किया गया। फिर, समुद्र-मन्थन के फल-स्वरूप ऐरावत आदि आठ जातियों के हाथी और हथिनी आई। इन्द्र की सेवा और राज्य-रक्षा में इनकी नियुक्ति हुई। इसके बाद **कौस्तुभ-मणि,** जिसे स्वयं विष्णु ने ग्रहण किया और वृक्ष-श्रेष्ठ **पारिजात कल्प-वृक्ष** की प्राप्ति हुई। **पारिजात कल्प-वृक्ष** की अनोखी शक्ति ने देवताओं का मनोभिलाष पूर्ण करना आरम्भ किया। **अप्सराएँ** आईं और इनके पीछे विपुल-धन-सम्पत्ति-पूर्ण शक्ति-शाली **लक्ष्मीजी** प्रकट हुईं। औषधि, जल, पुष्पादि से उनकी पूजा हुई।

'लक्ष्मी' अपना पात्र ढूँढ़ने लगीं। जो तपस्या में तप करता है, वह तो लक्ष्मी-वान् हो नहीं सकता। जो क्रोध का दमन नहीं कर सकता, वह अपने अध्यवसाय में सफलता प्राप्त कर लक्ष्मी-पति नहीं हो सकता। जो केवल ज्ञानी हैं, किन्तु कूप-मण्डूक-वत् घर में पड़े रह कर अभीष्ट-चिन्तन नहीं करते लक्ष्मी उनके भी गले में विजय-माल नहीं डाल सकतीं। जो उच्चाशय हैं, महात्मा हैं, साहस के साथ, उद्योग करते हैं, किन्तु काम को वशीभूत नहीं कर सकते, लक्ष्मी उनके यहाँ भी स्थिरा नहीं हो सकतीं। इसी तरह जिनमें आत्म-निर्भरता नहीं है, जो अपने कार्य के लिए दूसरों का मुँह ताकते हैं, लक्ष्मी उनका भी अवलम्बन नहीं कर सकतीं। जो दिखाने के लिए तो बड़े माला-तिलक-धारी और धार्मिक हैं, किन्तु सब प्राणियों में सम-दृष्टि नहीं रखते, लक्ष्मी उनके यहाँ भी स्थिरा नहीं हो सकतीं।

जो दिखाने के लिए, नाम के लिए दान करते हैं, कैवल्य-प्राप्ति के लिए सत्-दान नहीं करते, लक्ष्मी उनके यहाँ भी स्थिरा नहीं हो सकतीं। जो बलवान हैं, किन्तु समय के अनुसार बल का प्रयोग नहीं करते, लक्ष्मी उनके यहाँ भी स्थिरा नहीं हो सकतीं। जिन्होंने निर्गुणवादी होकर लोगों का साथ और भ्रमण छोड़ दिया, उन पर भी लक्ष्मी प्रसन्न नहीं हो सकतीं। जो दीर्घायु होकर, राष्ट्र का मङ्गल-चिन्तन और परोपकारादि व्रतों का पालन नहीं करते, जो स्वयं अमङ्गल-स्वरूप क्यों न हों, किन्तु अपने देश की मङ्गल-कामना नहीं करते, जो ऐसे निष्कामी हैं कि विष्णु-प्रिया लक्ष्मी की भी कामना नहीं करते, उन्हें लक्ष्मी अपनी कृपा-कोर से नहीं देखतीं। अतः सिन्धु सुता लक्ष्मी जी ने सबको छोड़ परम अध्यवसायी, मनन-शील पुरुषार्थी, सृष्टि-पालक, सृष्टि की उन्नति और रक्षा में तत्पर, राष्ट्रोन्नति के लिए समय पर सब कुछ सहन करनेवाले नारायण का ही आश्रय ग्रहण किया।

इसके पश्चात् सन्धान और प्रयोग करते-करते **'वारुणी'** अर्थात् **सुरा** का आविष्कार हुआ। प्रमादी असुर, उसी में लीन हो गए !

इस प्रकार, क्रमशः नौ रत्नों की प्राप्ति हुई, किन्तु **समुद्र-मन्थन** बन्द नहीं हुआ। कारण, देवताओं को अभीष्ट **'अमृत'** की प्राप्ति नहीं हुई। अतएव पुनः मन्थन में, विष्णु - रूपी दिव्य कान्ति-वाले भगवान् धन्वन्तरि श्वेत 'अमृत - कलश' लेकर अवतीर्ण हुए। उनकी कान्ति नव-जल-धर समान श्याम और नेत्र पद्म-समान लोहित थे। मोटी गर्दन, विशाल छाती और घुटनों तक केश स्वच्छ, सुन्दर लटकनेवाले आजानु-बाहु थे। उन तरुणायु पीताम्बर-धारी के कानों में 'कुण्डल' शोभा दे रहे थे। उनके केश घुँघराले थे। हाथों में कड़े, गले में माला और अनेक आभूषण-धारी भगवान् धन्वन्तरि सृष्टि के मनो - मोहक स्वरूप में थे। वे आयुर्वेद में पारङ्गत थे। इन्द्र के समान वे यज्ञांश के भोक्ता थे।

असुरों ने भगवान् धन्वन्तरि के हाथ से **'अमृत-कलश'** ले लिया। अन्त में भगवान् ने **त्रयोदश अवतार—मोहिनी-रूप** धारण कर, असुरों को मोह में डाला और राष्ट्र - रक्षक देवताओं को 'अमृत'-पान कराकर, अमर किया। दुराचारी असुरों को 'वारुणी' में ही आसक्त रखा, जिससे वे सृष्टि की अधिक हानि न कर सकें। इसके साथ ही, औषधि-पोषक **चन्द्रमा**, कीटाणु और रोग-नाशक **शङ्ख** तथा शत्रु-निहन्ता धनुष नामक तीन-चार रत्नों की और भी प्राप्ति हुई।

'समुद्र-मन्थन' के उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध है कि आदि-वैद्य **भगवान् धन्वन्तरि**, विष्णु भगवान् के चौबीस अवतारों में से द्वादश अवतार हैं। भारत की चतुर्वर्ण प्रजा जिस प्रकार अपने ऐहिक-पारलौकिक सुधार के लिए लोक-कल्याण-कारी भगवान् राम, कृष्ण, वामन आदि का स्मरण-पूजन और व्रतादि करती है, उसी प्रकार **भगवान् धन्वन्तरि** का भी मनन-पूजन और व्रतोत्सवादि करना चाहिए। आज भारत हीन-बल, क्षीण-काय और रोग-शोक-ग्रसित हो रहा है। कौन नहीं कह सकता कि **भगवान् धन्वन्तरि को भूल जाने के कारण**, हमें ये यातनाएँ भोगनी पड़ रही हैं। चातुर्वर्ण हिन्दू भावुक होते हैं, उत्सव-प्रिय होते हैं, यह कार्य समाज-प्रवर्तकों का है कि जन - समुदाय को उचित मार्ग पर चलाने का उद्योग करें।

श्री कार्तिक-माहात्म्य एवं दीपावली-महोत्सव

एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र जी की पट-रानी सत्यभामा ने प्रभु से पूछा—'भगवन् ! मैंने पूर्व जन्म में ऐसे कौन से पुण्य किए थे, जो मुझे आपकी अर्द्धाङ्गिनी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

सत्यभामा के इस कौतूहल को दूर करने के लिए भगवान् ने कहा—सत्य-युग में हरिद्वार-क्षेत्र में अत्रि-कुल में उत्पन्न देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहते थे । वे अग्निहोत्र-परायण विद्वान् ब्राह्मण सर्वदा सूर्य-व्रत के पालन में तत्पर रहा करते थे । उनकी 'गुणवती' नाम की एक कन्या थी । वृद्धावस्था प्राप्त होने पर उन्होंने चन्द्र नामक अपने एक शिष्य के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया । एक दिन हिमालय के जङ्गलों से समिधा (लकड़ी) लाते समय एक राक्षस ने उन दोनों—श्वसुर-जामाता को मार डाला । पिता और पति का अन्तिम सब संस्कार कर, गुणवती भगवान् विष्णु के पूजन, जप तथा तप आदि में अपना जीवन बिताती हुई उसी नगर में रहने लगी । उसने अपने जीवन भर केवल दो व्रतों का ही पालन किया । एक तो **'एकादशी' का उपवास,** दूसरा 'कार्तिक'-मास का पालन । हे सत्यभामा ! मुझे ये व्रत बहुत प्रिय हैं । ये व्रत **पुत्र-सम्पत्ति के दाता** तथा **भोग-मोक्ष को प्रदान** करनेवाले हैं ।

जो व्यक्ति **'कार्तिक'-मास में** (सूर्य के तुला-राशि पर रहने तक) नित्य **प्रातःकाल सूर्योदय के पहले स्नान** करते हैं, वे महा - पातकी होते हुए भी 'मोक्ष' को प्राप्त करते हैं । जो **'कार्तिक'-मास में स्नान, जागरण, दीप - दान** और **तुलसी का पूजन** करते हैं, वे मुझे अपने सन्निकट प्राप्त करते हैं । जो **'कार्तिक'-मास में** नित्य **विष्णु-मन्दिर में झाड़ू लगाते हैं** और **स्वस्तिकादि का निर्माण** करते हैं, वे 'मुक्ति प्राप्त करते हैं । पिता और पति से विहीन गुणवती ने आजीवन **'कार्तिक'-व्रत** का इस प्रकार पालन करते हुए, श्रीविष्णु भगवान् की सेवा में ही अपना जीवन व्यतीत कर दिया था । इसी पुण्य के प्रभाव से उसे मेरे समीप स्थान मिला ।

ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रार्थना पर, जब मैंने कृष्णावतार लिया, तब मेरे समस्त पार्षद-गण (भक्त-गण) भी मेरे साथ आए । ये समस्त यादव-गण मेरे भक्त-गण हैं । तुम्हारे पिता देवशर्मा अब सत्राजित हुए हैं । गुणवती के पति चन्द्रशर्मा ही अक्रूर हैं और हे सत्यभामा ! तुम्हीं उस देवशर्मा की कन्या तथा चन्द्रशर्मा की भार्या 'गुणवती' हो । 'कार्तिक'-मास के व्रत-पालन और पुण्य से ही तुम्हें मेरे निकट यह स्थान मिला है ।

पूर्व - जन्म में तुमने मेरे मन्दिर के आँगन में तुलसी की वाटिका लगाई थी, इसीलिए तुम्हारे आँगन में कल्प-वृक्ष शोभा पा रहा है । तुमने कार्तिक में जो दीप-दान दिया था, उसी के फल-स्वरूप तुम्हारे घर में यह स्थिर लक्ष्मी विराज रही है । तुमने व्रत' आदि पुण्य कर्मों को, **विष्णु की सेवा में अर्पित** किया था—इसीलिए तुम मेरी पत्नी हुई हो । तुमने आजीवन जो **'कार्तिक'-व्रत** का अनुष्ठान किया है, उसके प्रभाव से कभी भी तुम्हारा मुझसे वियोग नहीं होगा ।

सत्यभामा ने प्रसन्न होकर भगवान् से पूछा—'देव ! आपको तिथियों में **'एकादशी'** तथा समस्त महीनों में यह **'कार्तिक'-मास** ही इतना अधिक प्रिय क्यों हैं ?' भगवान् ने इस पर उत्तर दिया—"सत्ये ! एक समय बद्री-वन में मैंने समस्त ऋषियों को बुलाकर, जल के भीतर बिखरे हुए सब वेदों का पता लगाने का आदेश दिया था । मैं तब तक समस्त देवताओं के साथ 'प्रयाग' में ही ठहरा रहा ।

'मेरे आदेशानुसार समस्त मुनियों ने 'यज्ञ' और 'बीज'-सहित समस्त 'वेद-मन्त्रों' का उद्धार किया। 'वेद' के जितने मन्त्रों का—जिस ऋषि ने उद्धार किया, उतने भाग का वही तब से 'ऋषि' माना जाने लगा। उन ऋषियों ने 'प्रयाग' में आकर ब्रह्माजी सहित, श्रीविष्णु भवागन् को अपने-अपने प्राप्त किए हुए 'वेद' और 'मन्त्र' अर्पण कर दिए। 'यज्ञ' सहित वेदों को प्राप्त कर ब्रह्मा जी को अपार हर्ष हुआ और उन्होंने समस्त देवताओं और ऋषियों सहित 'प्रयाग' में अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होने पर देवताओं ने श्री विष्णु भगवान् से प्रार्थना की—'हे भगवन्! हमारे लिए आज बड़े हर्ष का समय है। हे रमापते! इस स्थान पर ब्रह्माजी के खोये हुए सब वेदों की पुनः प्राप्ति हुई है और आपकी कृपा से हमें भी 'यज्ञ'-भाग उपलब्ध हुआ है। अतः हमें आप वर-दान दें। आपसे प्रार्थना है कि यह 'प्रयाग'-भूमि पृथ्वी पर सबसे अधिक श्रेष्ठ और पुण्य-वर्द्धक भूमि हो। आपके प्रसाद से यह 'भोग' और 'मोक्ष' की दाता हो। इस स्थान पर किए हुए समस्त पुण्य-कार्य अक्षय हों—यही वर-दान हम चाहते हैं।'

देवताओं की इस प्रार्थना को भगवान् ने स्वीकार करते हुए कहा—'हे देव-गण! आपकी यह महद् इच्छा पूर्ण होगी। आज से यह 'प्रयाग'-क्षेत्र 'ब्रह्म-क्षेत्र' का नाम धारण कर पृथ्वी पर परम पुनीत स्थान होगा। सूर्य-वंश में उत्पन्न राजा भगीरथ यहाँ गङ्गा को लेकर आएँगे और सूर्य-कन्या यमुना, गङ्गा के साथ ही यहीं आकर मिलेंगी। ब्रह्माजी के साथ आप समस्त देव-गण भी—यहीं मेरे साथ निवास करिए। **'प्रयाग' को तीर्थ-राज नाम की ख्याति** प्राप्त होगी।'

'कार्तिक' - मास में ही 'प्रयाग' में विष्णु भगवान् ने यह वर देकर **'प्रयाग' को 'तीर्थ-राज' के नाम से महत्ता** प्रदान की थी, इसलिये **'कार्तिक'-मास** मुझे अधिक प्रिय है।'

'कार्तिक'-व्रत का आरम्भ आश्विन शुक्ल पक्ष की एकादशी से ही आरम्भ करना चाहिए। पहर भर रात रहते हो **'कार्तिक'-व्रत** करनेवाले को शौच आदि से निवृत्त होकर 'स्नान' कर लेना चाहिए। **'कार्तिक'-मास में भगवान् के नाम का कीर्तन** (गुण-गान) करना चाहिए।

कार्तिक त्रयोदशी - माहात्म्य—एक दिन यमराज ने अपने दूतों से पूछा जब तुम प्राणियों के प्राण-हरण करते हो, तब तुमको किसी समय किसी के प्राण-हरण करने में दया भी आती है या नहीं? यदि तुमको दया आई है, तो कब और कहाँ?'

दूत बोले—'हंस नाम का एक बड़ा प्रतापी राजा था। वह किसी समय शिकार खेलने वन में गया। दैवात् राजा अपने साथियों से बिछुड़, मार्ग भूल कर, हेम राजा के राज्य में चला गया। हेम राजा ने महाराज हंस का उचित आदर - सत्कार किया। उसी समय राजा हेम के यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु छठी के दिन देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा—**राजन्! तुम्हारा यह लड़का चार दिन बाद मर जायगा।** राजा हंस को यह ज्ञात हुआ, तो उसने हेमराज के पुत्र को मृत्यु से बचाने के लिये यमुना जी की खोह में छिपाकर रखा, परन्तु युवा होने पर जब उसका विवाह हुआ, तो विवाह के ठीक चौथ दिन हम लोगों ने उसका 'प्राण'-हरण किया। हे नाथ! माङ्गलिक समारोह में ऐसी शोक-जनक घटना का होना वास्तव में अत्यन्त घृणित कार्य था, परन्तु क्या किया जाता—हम लोग तो पर-तन्त्र थे।'

यह वचन सुनकर यमराज ने कहा—**'जो विधि-पूर्वक धन-तेरस के दिन मेरा पूजन, दीप-दान और व्रत करेंगे, उनकी असामयिक मृत्यु कदापि न होगी।'**

नरक-चतुर्दशी दीप-दान-माहात्म्य—जो मनुष्य नरक - चतुर्दशी को सूर्योदय के पश्चात् स्नान करता है, उसके वर्ष-भर के शुभ कार्यों का नाश होता है। कार्तिक त्रयोदशी से कार्तिक अमावास्या

पर्यन्त तीन दिन 'दीप'-दान करना चाहिए क्योंकि श्री वामन भगवान् ने क्रमशः इन्हीं तीन दिनों में सम्पूर्ण पृथ्वी नापने के पश्चात् 'बलि' से वरदान माँगने को कहा था।

उस समय 'बलि' ने प्रार्थना की थी--'महाराज ! मुझको तो किसी 'वर' की आकांक्षा नहीं, परन्तु लोक-कल्याण के निमित्त एक वर-दान माँगता हूँ। **कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावास्या**--इन तीन दिनों में आपने मेरा राज्य नापा है, अतः जो मनुष्य मेरे राज्य में **चतुर्दशी के दिन यमराज के हेतु दीप-दान** करे, उसको 'यम-यातना' न होनी चाहिए और जो मनुष्य इन तीन दिनों में 'दीपावली' करे; उसके घर को श्री लक्ष्मी जी कभी न छोड़ें।' राजा बलि की प्रार्थना सुनकर भगवान् ने कहा--'एवमस्तु ! जो मनुष्य इन तीन दिनों में **दीपोत्सव** और **महोत्सव** करेगा, उसको छोड़कर मेरी प्रिया लक्ष्मी कहीं अन्यत्र नहीं जायँगी।'

दीपावली-माहात्म्य—कार्तिक कृष्ण अमावास्या को प्रातः-काल स्नान करे और भक्ति - पूर्वक देवताओं तथा पितरों का पूजन करे। उन्हें प्रणाम करके पार्वण श्राद्ध करे। फिर **दीपोत्सव** कर भगवती लक्ष्मी का षोडशोपचार से पूजन करना चाहिए। भगवती लक्ष्मी के साथ-साथ गणेश आदि देवताओं का भी पूजन करना चाहिए। कारण, राजा बलि के कारागार में लक्ष्मी सभी देवताओं के सहित बन्धन में थीं। कार्तिक कृष्ण अमावास्या के दिन भगवान् विष्णु ने उन सबको कैद से छुड़ाया। देवता बन्धन-मुक्त होते ही, श्रीलक्ष्मी जी के साथ 'क्षीर' - सागर में जाकर सो गए। अतः अपने घर में, कार्तिक कृष्ण अमावास्या के दिन सभी देवताओं के शयन का इस तरह से सुन्दर प्रबन्ध कर देना चाहिए, जिससे वे 'क्षीर'-सागर की ओर न जाकर स्वच्छ स्थान और सु - कोमल शय्या को पाकर वहीं सो रहें। रेशमी-वस्त्र पर 'कमल'-पुष्प का सुन्दर 'मण्डप' बनाना चाहिए क्योंकि लक्ष्मी जी का निवास - स्थान 'कमल'-पुष्प ही है। जो लोग लक्ष्मी जी का इस प्रकार स्वागत करते हैं, उनको छोड़ कर वे अन्यत्र कहीं नहीं जाती हैं। इसके विरुद्ध, जो आलस्य और निद्रा में पड़कर सो जाते हैं, श्रद्धा-पूर्वक लक्ष्मी जी का पूजन नहीं करते, वे सदैव दरिद्रता के शिकार बने रहते हैं।—**संग्रह-कर्त्ता : पं० रुद्रदत्त पाठक**

पाठकों के पत्र

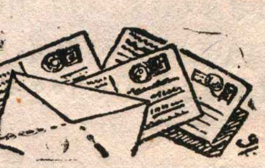

श्री ए० के० सिंह, अन्सारी नगर, नई दिल्ली

'...अपने मित्र से '**चण्डी**' मासिक पत्रिका के बारे में जानकारी प्राप्त हुई, जो विगत ५२ वर्षों से पीड़ित मानवता को श्रेष्ठ आध्यात्मिक ज्ञान दे रही है। वर्तमान समय में प्राचीन ज्ञान का दुरुपयोग और इससे ठगी करनेवालों की कमी नहीं है, जिसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण डा० श्रीमाली जी की '**मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र विज्ञान**' पत्रिका और कार्यालय है।

वर्तमान में मनुष्य में धैर्य की कमी है। यही कारण है कि धूर्त लोग उनकी इस मानसिकता का पूरा लाभ उठा रहे हैं। मेरे विचार से कमी उन लोगों की भी है, जो **अध्यात्म को केवल चमत्कारिक वस्तु** मानकर अपनाते हैं और चमक-दमक, विज्ञापन करनेवालों के चंगुल में फँसकर अपना सर्वस्व उनको समर्पित कर बैठते हैं। निश्चय ही 'अध्यात्म' विज्ञान है, परन्तु तभी, जब इसे पूर्ण '**धैर्य**' और '**श्रद्धा**' से अपनाया जाए...'

'मातृ'-चरण से लाभ

• पं० श्री ललन पाण्डेय, साहित्य-पुराणाचार्य, पटना (बिहार)

मातृ-शक्ति वह शक्ति है, जिससे जो चाहिए, सब मिलता है। जिसने **मातृ-चरणों की शरण में** अपने मन, वचन और कर्मों को लगाया, उसने क्या नहीं पाया ? हमारा अज्ञान आज हमें **मातृ - चरणों को समझने का अवसर** नहीं दे रहा है। मानव 'मन', आज इतना चञ्चल व विषयासक्त हो गया है कि उसे **मातृ-चरण** क्या, अपने चरणों के विषय में भी जानकारी नहीं रह गई है कि मेरे चरण उचित पथ पर जा रहे हैं या अनुचित राह पर ! ऐसी अवस्था में 'समाज' का पथ - भ्रष्ट होना स्वाभाविक है।

जब-जब भारत ने **आद्य - शक्ति की पहचान** नहीं की, वह दुःखी रहा। वही दशा जगद्-गुरु शङ्कराचार्य के सामने भी आई थी, जब यहाँ के लोग **वास्तविक शक्ति** की जानकारी नहीं रहने के कारण 'दुःख' भोग रहे थे। तब जगद्-गुरु शङ्कराचार्य ने पुकार कर कहा—हे भाई, **तुम्हारी स्त्री कौन है ? तुम्हारा पुत्र कौन है ? यह संसार बहुत विचित्र है, इसकी चिन्ता छोड़ो। तुम कौन हो और कहाँ से आए हो ? इस रहस्य की जानकारी प्राप्त करने की चिन्ता करो।**

भगवान् शङ्कराचार्य का अभिप्राय यही था कि सकल संसार, स्थावर या जङ्गम आदि - शक्ति 'माता' से ही उत्पन्न होता है, रक्षा पाता है। अतः **उस मातृ-चरण की खोज** करे, प्राप्त करे। सुख-पूर्वक अपनी 'माता' की गोद में जिस तरह एक बालक निर्भय होकर आनन्द की छलाँग मारता है, संसार के लोग भी **'मातृ-चरण' की छाया** में अनिर्वचनीय आनन्द का उपभोग करें। इसी अनुभूति के आधार पर जगद्-गुरु शङ्कराचार्य ने **आनन्द - लहरी** के ८६ वें श्लोक में लिखा है—**'हे चण्डि, तुम्हारे ये दोनों चरण स्वर्ग में निवास करनेवाले देवों और देवियों के हाथों को हँसते हैं कि देखिए—चण्डी देवी के हम वे दोनों चरण हैं, जिसने अपने स्वस्थ हाथों से अनेकानेक दरिद्रों को कल्याण और लक्ष्मी का दिन-रात दान किया है। इसलिए हे चण्डि, तुम्हारे उन चरणों को नमस्कार है।'**

कहने का अभिप्राय यह है कि देवता भी **'शक्ति'** के आगे झुकते ही नहीं, उसे स्वीकार करते हैं और **शक्ति की पूजा** करते हैं। **माता का भजन, मनन और चिन्तन** करनेवाला सभी सांसारिक सुखों को प्राप्त करता है, अतुल शक्ति और जगज्जयिनी प्रतिभा प्राप्त करता है तथा जीवन में ही पर-ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं। इसी आशय को जगद्-गुरु शङ्कराचार्य ने भी (**आनन्द-लहरी** के ६६ वें और १०० वें पद्य में) स्पष्ट करते हुए कहा **है—**

हे महा-माये ! बेद-शास्त्र को जाननेवाले तुमको **वाणी की देवी** बताते हैं, कमल पर निवास करनेवाली विष्णु की पत्नी **लक्ष्मी** भी तुमको कहा जाता है, कुछ लोग **हिमालय की बेटी** तथा **शिव की सहचरी** भी तुमको कहते हैं। तुम्हारी महिमा इतनी असीम है कि चौथी तुम क्या हो माँ, समझ में नहीं आता। अपनी बुद्धि के अनुसार यही कह सकता हूँ कि हे **पर-ब्रह्म की पटरानी**, तुम्हीं चौथी वह शक्ति हो, जो सकल विश्व को घुमा रही हो, नचा रही हो ॥६६॥

हे माँ, तुम्हारा भजन करनेवाला मनुष्य **सरस्वती और लक्ष्मी**, जो ब्रह्मा और विष्णु की पत्नियाँ हैं, इन दोनों सौतिनों के बीच में पुत्र की तरह आनन्द करता है, अपने सुन्दर शरीर से काम-देव की धर्म-पत्नी को भी मोहित कर देता है, भगवान् शङ्कर की तरह चिरजीवी बनकर पर-ब्रह्म नाम-वाले रस (आनन्द) का स्वाद लेता है। तुम्हारा भजन करनेवाला इस ऊँचाई पर पहुँच जाता है। माँ, इसलिए तुमको नमस्कार है ॥१००॥

'श्रीत्रिशिरा देवी विधानम्'—एक समीक्षा

꙰ श्री भैरवानन्दनाथ, चकराघाट, सागर (म० प्र०)

अगस्त, ९३ के अन्तर्गत **'साधन-माला'** में पूज्य पं० कृष्णानन्द जी मिश्र 'वैद्य' प्रयाग द्वारा प्रेषित पाण्डु-लिपि का प्रकाशन हुआ है। नाम है—**'श्री त्रिशिरा देवी विधानम्'**। यह विधान जुलाई, ९३ की **'साधन-माला'** में प्रकाशित **'शत्रु-विध्वंसिनी स्तोत्र'** से कुछ विस्तृत है। यथा—इसमें **'ध्यान'** भी है और **'हवन'** का भी निर्देश है। साथ ही 'शत्रु-विध्वंसिनी मन्त्र, शापोद्धार-मन्त्र और अग्नि-मन्त्र' भी दिए हैं। इस प्रकार अवश्य ही यह प्रति विस्तृत विधि प्रस्तुत करती है।

इसी स्तोत्र की दो और पाण्डु - लिपियाँ मिली हैं—(१) दीक्षितपुरा, जबलपुर - निवासी श्रीसत्यार्थी विद्यासागर सरस्वती और (२) तिली मार्ग, सागर निवासी पं० श्री ए० एन० तिवारी के पास। ये दोनों शब्दशः एक समान हैं, किन्तु उक्त स्तोत्र का तीसरा ही रूप प्रस्तुत होता है। इसमें **'शत्रु-विध्वंसिनी मन्त्र'** अलग ही है। यह भी इसी अङ्क में प्रकाशित है।

ऐसा लगता है कि यह स्तोत्र देश के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग ढङ्ग से प्रचलित है। मैंने जो स्तोत्र भेजा है, वह मेरा स्वयं अनुभव किया हुआ है। सागर और जबलपुर में जो प्रति मिली, वह उन दोनों में से किसी के भी द्वारा अनुभव नहीं की गई और पं० मिश्र जी की प्रति में कुछ त्रुटियाँ भी हैं, जिन्हें स्पष्ट करने का प्रयास कर रहा हूँ। इसे आलोचना न माना जाए, एक शोध-कर्ता का शोधात्मक कार्य माना जाए।

पूज्य पं० मिश्रजी की प्रति का शीर्षक ही गलत है। सही नाम तो **'श्री शत्रु-विध्वंसिनी स्तोत्रम्'** ही है। इसके विनियोग का आरम्भ ही **'ॐ अस्य श्री शत्रु-विध्वंसिनी-स्तोत्र-मन्त्रस्य'** से है और देवता भी **'श्री शत्रु-विध्वंसिनी'** हैं, तो **'श्री त्रिशिरा देवी विधानं'** शीर्षक कैसे दिया गया? 'त्रिशिरा' तो स्तोत्र में वर्णित तीसरा नाम है। स्तोत्र का पहला ही नाम **'शत्रु-विध्वंसिनी'** है। अतः निर्विवाद बात है कि स्तोत्र **'श्री शत्रु-विध्वंसिनी स्तोत्र'** ही है—**'श्री त्रिशिरा-विधानं'** नहीं।

[**'शत्रु-विध्वंसिनी'** वास्तव में विशेषण है, यह उसके शब्दार्थ से ही प्रकट है। इस नाम की कोई **'देवी'** नहीं हैं। इसी प्रकार **'त्रिशिरा'** नाम भी विशेष स्वरूप का सूचक है। शोधात्मक दृष्टि से तो यह मानना अधिक उचित होगा कि यह भगवती **'भैरवी'** का विशिष्ट स्तोत्र है। **'दश महा-विद्याओं'** में **'भैरवी'** देवी का अपना स्थान है।—सं०]

इस 'विधान' में **'शत्रु-विध्वंसिनी मन्त्र'** भी ठीक नहीं है। यह तो **'आर्द्र-पटी विद्या'** है। प्रमाण के लिए **'हिन्दी तन्त्रसार'**, पृष्ठ ३५८ देखें। फिर उक्त मन्त्र में 'अमुकं-वधाय' गलत है, **'अमुक-वधाय'** होना चाहिए। मन्त्र के उद्धार में स्पष्ट निर्देश है। यथा—

'प्रणवो हृदयं भगवति! चामुण्डे! रक्त-वाससे! अप्रतिहत-रूप-पराक्रमे! अमुक-वधाय विचेतसे! वह्निवल्लभा' अर्थात् **'ॐ नमो भगवति! चामुण्डे! रक्तवाससे अप्रतिहत-रूप-पराक्रमे! अमुक-वधाय विचेतसे! स्वाहा।'** **'हिन्दी तन्त्रसार'** में **'विचेतसे'** पद **'विचतसे'** छप गया है, पाठक बन्धु उसे सुधार लें।

इसी प्रकार **'मूल हवन-विधि'** जो संस्कृत में है और **'विशेष'** में दी गई विधि में भी कोई ताल-मेल नहीं है। साथ ही **'फल-श्रुति'** से भी उक्त दोनों का मेल नहीं बैठता। **'विशेष'** में लिखा है—'हवन-विधि में उल्लिखित द्रव्यों—पीली सरसों, कटु-तैल, निम्ब-पत्र, गुग्गुल आदि से अग्नि-मन्त्र पढ़ता हुआ

१००० आहुतियाँ दे।' जबकि 'हवन - विधि' में लिखा है—'**अग्नि - संस्कारं कृत्वा गुग्गुलं, रक्त-चन्दनं घृताप्लुतं वा केवलं नाम चतुर्थ्यन्त नमः स्वाहा। इति विधानेन हवनं कुर्यात् प्रति-नाम्ना।**' इसका सीधा-सा अर्थ हुआ—'अग्नि-संस्कार करके गुग्गुल, रक्त-चन्दन को घृत मिलाकर अथवा केवल घृत से चतुर्थ्यन्त नाम (स्तोत्र में वर्णित) के अन्त में 'नमः स्वाहा' लगाकर हवन करें। इस विधि से प्रत्येक नाम से हवन करें। यह विधि '**फल-श्रुति**' में कथित '**गुग्गुलं चन्दनं सर्पिः, होमयेत् सर्पिषाऽथवा**' से पूरी तरह मेल खाती है, जबकि '**विशेष**' में पीली सरसों, कटु-तैल और निम्ब-पत्र बढ़ा दिए हैं और रक्त-चन्दन तथा घृत को हटा दिया गया है। पीली सरसों, कटु-तैल और निम्ब-पत्र का तो उल्लेख '**हवन-विधि**' या '**फल-श्रुति**'—दोनों में ही नहीं है। फिर ये वस्तुएँ '**हवन-विधि**' में कैसे कही गई हैं?

'**हवन-विधि**' स्पष्ट रूप से स्तोत्र के नामों से हवन करने का निर्देश देती है तो '**अग्नि-मन्त्र**' से हवन क्यों किया जाए? इस विरोधाभास का निराकरण होना चाहिए।

पूज्य मिश्र जी ने '**विशेष**' के अन्तर्गत यह लिखकर कि—'इससे मारण-प्रयोग कदापि न करे। इससे अपना ही सर्वनाश होता है', इस स्तोत्र का मूल उद्देश्य ही स्तम्भित कर दिया है। यह स्तोत्र स्पष्टतः '**शत्रु-शमन**' के लिए ही है। ऐसे 'विनियोग' में भी उल्लेख है। यथा—'**मम शत्रु शीघ्रं विध्वंसनार्थे जपे विनियोगः।**' फिर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि दुर्वासना का 'मारण' कैसे आ गया? इन दुर्वासनाओं के मारण या शमन या दमन के लिए कुछ भी कह लें—ऐसे प्रयोगों को करने का विधान तो शास्त्रों में मुझे कहीं नहीं मिला। न ही पौराणिक कथाओं में ऐसा कुछ पढ़ते-सुनते मिला। नियमित साधना से क्रमशः इन दुर्वासनाओं का शमन हो जाता है। उक्त कथन पाठकों को भ्रमित ही करेगा।

'**साधन-माला**' का प्रकाशन '**चण्डी**' में इसलिए किया जा रहा है कि पाठकों और साधकों को ऐसे अनुभूत और ठीक-ठीक विधि-विधान मिल सकें, जिनसे वे अपनी और आवश्यक होने पर दूसरों की भी लौकिक या पारलौकिक समस्याओं का समाधान कर सकें। '**साधन-माला**' में यदि भ्रमित करने-वाले विधि - विधान प्रकाशित होंगे, तो इससे किसी का भी भला नहीं होगा। जो भी विधि - विधान साधक बन्धु भेजें, वे एकदम स्पष्ट हों, ताकि उनके आधार पर कोई भी व्यक्ति साधना या प्रयोग कर सके। तभी '**साधन-माला**' के सदुद्देश्यों की सिद्धि हो सकेगी।

इस लेख का उद्देश्य किसी कार की आलोचना नहीं है, अपितु सत्य के पास पहुँचने का एक प्रयास है। यदि इससे पूज्यपाद श्री मिश्र जी या अन्य किसी के भी हृदय को ठेस लगती है तो मैं कर-बद्ध क्षमा-प्रार्थी हूँ।

['**साधन-माला**' के अन्तर्गत प्रयोगों का प्रकाशन एक तो इस उद्देश्य से किया जा रहा है कि लुप्त-प्राय प्रयोग सुरक्षित हो जाएँ। दूसरे उनमें जो अशुद्धियाँ या पाठान्तर और भ्रामक विधियाँ प्रचलित हैं, उनका समाधान हो सके। यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि '**कोई इन प्रयोगों को पढ़कर इन्हें करने लगे**' क्योंकि प्रयोगों को करने का अधिकार केवल दीक्षा-प्राप्त लोगों को है और उन्हें भी उसके लिए अपने गुरुदेव या प्रयोगों के अनुभवी साधकों का मार्ग-दर्शन लेना अत्यावश्यक है अन्यथा वे लाभ के स्थान पर हानि उठा सकते हैं। **आशा है, पाठक बन्धु इस सम्बन्ध में सावधान रहेंगे।** परम पूज्य पं० कृष्णानन्द जी मिश्र के हम आभारी हैं कि उनकी कृपा से अनेक दुर्लभ प्रयोगों का प्रकाशन '**साधन-माला**' के अन्तर्गत हुआ है और हमें विश्वास है कि वे श्री भैरवानन्दनाथ जी की '**समीक्षा**' पर उसी दृष्टि से विचार करने की कृपा करेंगे, जिस उद्देश्य से वह लिखी गई है।—सं०]

'मातृ'-भक्त पं० ईश्वरीदत्त मिश्र

❀ प्रो० वामाचरण मिश्र, दर्शन-शास्त्र विभाग, सिंहभूम कालेज, चाण्डिल (बिहार)

बात सन् १९७२ ई० की है। मैं पूज्य-पाद बाबा के साथ **'शारदीय नव-रात्र'** के पुनीत अवसर पर **महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल** गया था। उस समय मेरी अवस्था १४ वर्ष की रही होगी। मुझे बाबा से **श्रीदुर्गा सप्तशती** का पाठ करने के लिए आदेश प्राप्त हुआ। संस्कृत का ज्ञान अत्यल्प था, फिर भी आदेश पाकर **'सप्तशती-पाठ'** मैंने प्रारम्भ किया। मुझे **'सप्तशती-पाठ'** से अपूर्व शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हुई, जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

बाबा पं० श्री ईश्वरीदत्त मिश्र अलौकिक प्रतिभा - सम्पन्न साधक थे। आपका जन्म गया—जिलान्तर्गत झुनाठी ग्राम में शुभ सम्वत् १९६१ में एक धर्म-निष्ठ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा पं० देवताचरण मिश्र और पूज्य पं० रामाप्रसाद मिश्र के श्री-चरणों में सम्पन्न हुई। पं० देवताचरण मिश्र भगवती दक्षिणा-काली के अनन्य उपासक थे और गया नगर के प्रतिष्ठित साहित्यकार, वैद्य भी थे। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद पूज्य बाबा ने भगवान् भूत-नाथ शङ्कर की नगरी 'काशी' में प्रवेश किया। बारह वर्षों के कठोर अध्ययन के पश्चात् वर्ष १९३१ में व्याकरण-शास्त्राचार्य की परीक्षा में अपूर्व सफलता प्राप्त कर आप अपनी जन्म-भूमि की ओर लौटे।

पूज्य बाबा अपने समय के बहुत बडे वक्ता और शास्त्रार्थी विद्वान् भी थे। एक राज-घराने में बाबा को एक अनुष्ठान के सन्दर्भ में आमन्त्रित किया गया। बाबा सामान्य-वेश में राज-दरबार में उपस्थित हुए। राज-दरबार के अनुकूल उनके वस्त्र नहीं थे। बाबा के अतिरिक्त और अन्य विद्वान् भी आमन्त्रित किए गए थे। एक विद्वान्, राजर्षि-रूप में, राज-दरबार में आए थे। उनमें बाह्य आडम्बर बहुत था। उन्होंने राजा के समक्ष कहा कि 'बाबा राज-दरबार के उपयुक्त नहीं हैं। ये चौराहे पर भटकनेवाले विद्वान् हैं। इनकी प्रतिभा सामान्य लोगों के यहाँ ही काम कर सकती है।' बाबा को यह बात लग गई और उन्होंने ओज-पूर्ण शब्दों में उन बाह्याडम्बरी विद्वान् को ललकारा कि 'जो भी पूछना है, आप पूछें, मैं आपके सभी प्रश्नों का उत्तर दूँगा। अन्यथा मुझे पूछने का अवसर प्रदान कीजिए।' वह विद्वान् शान्त हो गए। पुनः बाबा ने संस्कृत में श्लोक की रचना कर राजा को सुनाई। राजा ने बाबा से उस श्लोक का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कहा। बाबा बोले कि 'जिस प्रकार हंस की शोभा कौओं के बीच में नहीं होती है, सियार के बीच में सिंह शोभता नहीं है, गदहों के बीच में घोडे की शोभा नहीं होती है, उसी प्रकार मूर्ख - मण्डली में विद्वान् की शोभा नहीं होती है।' राजा ने पुनः प्रश्न किया कि 'आखिर विद्वान् शोभते कहाँ पर हैं?' बाबा ने तुरन्त एक श्लोक में ही राजा को सुनाया कि 'हंस की शोभा कमल-से मण्डित तालाब में है, सिंह की शोभा पहाड़ों की गुफा में है, घोड़े की शोभा 'रण'-क्षेत्र में है और विद्वान् की शोभा विद्वानों के बीच में ही होती है।'

पूज्य बाबा गुण-ग्राही तो थे ही, साथ ही अत्यन्त उदार भी थे। वे विद्वानों, साधकों और तपस्वियों का 'स्वागत' करते थे, उनका पूर्ण सम्मान करते थे। निरक्षर सत्-पात्रों के लिए भी उनके हृदय में वही भाव था। यदि कोई अन-पढ़ ब्राह्मण उनके पास अपनी समस्याएँ लेकर आता, तो वे स्पष्ट

पूछते थे कि आप 'दुर्गा-पाठ कर सकते हैं या नहीं ?' जब वह कहता कि 'मैं पढ़ा - लिखा नहीं हूँ, तब वे कहते कि 'दुर्गा-दुर्गा' तो कह सकते हैं। नित्य 'दुर्गा-दुर्गा' का अहर्निश 'जप' कीजिए, आपकी सभी आपत्तियाँ नष्ट हो जायँगी।'

पूज्य बाबा '**श्रीदुर्गा सप्तशती**' की नित्य पाँच आवृत्तियाँ किया करते। एक बार एक विद्वान् ने प्रश्न किया कि 'गुरु जी, '**दुर्गा - पाठ**' तो बहुत ही सावधानी से करना चाहिए। सुनते हैं कि अगर नियमों में त्रुटि होती है, तो भगवती कुपित होकर साधक के सभी अभीष्टों को नष्ट कर देती हैं।' पूज्य बाबा ने कहा—'**यस्यां वै नियमो नास्ति, नास्ति दुःसिद्धिदा प्रिये ! । नास्ति शापवती चण्डी, निष्कीला सिद्धिदा परा ॥**' अर्थात् स्वयं शङ्कर जी पार्वती से कहते हैं कि 'हे प्रिये ! '**दुर्गा-पाठ**' का कोई नियम नहीं है। दुर्गा अपने भक्तों को दुः-सिद्धि नहीं देती, अपितु सु-सिद्धि देती है। दुर्गा शापवती नहीं है, साथ ही निष्कीलिता है। जिस अवस्था में आप रहें, 'पाठ' होना चाहिए। इसका परिणाम निःसन्देह श्रेयस्कर होगा।' पूज्य बाबा का विचार तो यहाँ तक था कि मन्दिरों में जाकर 'पाठ' करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। जिस स्थल पर आप 'पाठ' कर रहे हैं, वह स्थल ही स्वतः मन्दिर के समान है। इस बात की पुष्टि में, वे साधकों के समक्ष यह श्लोक कहा करते थे—

यत्रैतत् पठ्यते सम्यङ्, नित्यमायतने मम । सदा न तद् विमोक्ष्यामि, सान्निध्यं तत्र मे स्थितम् ॥

बाबा को भगवती **आद्या शक्ति की असीम कृपा** प्राप्त थी। एक बार गाँव में जबर्दस्त महामारी का प्रकोप हुआ। अनेक लोग मृत्यु-मुख में चले गए। बाबा के परिवार के लोगों की स्थिति भी गम्भीर थी। बड़े-बड़े डाक्टर आते, रोगियों का परीक्षण करते और दवा देते लेकिन दवा जैसे मिट्टी में डाल दी गई हो, सब असफल हो जाती। एक रात्रि के समय बहुत विकलता हुई। डाक्टर आते, पर कोई लाभ नहीं हुआ। सभी कुछ क्षणों के मेहमान मालूम होने लगे। तब बाबा ने कहा कि 'अब कोई लौकिक प्रयत्न शेष नहीं है, मैं माँ के सान्निध्य में जाता हूँ।' वे सीधे आद्या-शक्ति के मन्दिर में गए। वहाँ भगवती के समक्ष बैठकर '**सप्तशती-पाठ**' प्रारम्भ कर दिया। 'पाठ'-समाप्ति के बाद बाबा जब बाहर आए, तब देखा कि सभी ग्राम-वासियों के मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की रेखा है। बाबा ने पूछा 'कैसे हैं गाँव के लोग ? और मेरे बड़े बाबू ?' लोगों ने कहा—'सभी बहुत अच्छे हैं।' पूज्य बाबा के पास 'आद्या'-शक्ति का थोड़ा 'प्रसाद' था। वही अल्प मात्रा में सभी रोगियों को खिलाया तथा ग्राम - वासियों में बँटवाया और कहा कि 'अब सभी अच्छे हो गए हैं। माता ने हम सभी के कष्ट दूर कर दिए हैं। माँ भक्तों के लिए क्या नहीं कर सकती ?'

नित्य पाँच आवृत्तियाँ '**दुर्गा सप्तशती**' का करना, तत्पश्चात् '**काली कर्पूर स्तवराज**' का पाठ करना। पुनः '**बगला-मुखी**' का हवन, '**सन्ध्या**' और '**पार्थिव पूजन**'—इनके दैनिक कार्यक्रम में थे। भगवती विन्ध्यवासिनी की असीम कृपा थी इनके ऊपर। इसलिए विन्ध्याचल को ही इन्होंने अपना साधन-क्षेत्र बनाया था।

पूज्य बाबा अब हमारे बीच नहीं हैं। उन्होंने भाद्र - पद कृष्ण पक्ष द्वितीया गुरुवार को हम सभी को छोड़कर महा-प्रयाण किया। उनके प्रति हमारी शत-शत श्रद्धाञ्जलियाँ।

साधनमाला

[आश्विन-अङ्क (अक्टूबर, ९३) से आगे]

(१२७)

सभी कामनाओं की पूर्ति का सिद्ध प्रयोग

[प्रस्तुत 'प्रयोग' मेरा स्वयं का अनुभूत है। मेरी बच्ची १२ वर्ष की खो गई थी। भगवती की अनुकम्पा व निम्न-लिखित 'प्रयोग' के प्रभाव से मिल गई। ७ दिन से बच्ची का पता नहीं चल पा रहा था। मैंने निम्न-खिखित 'प्रयोग' किया। 'प्रयोग' के १ घण्टे बाद ही मेरे एक मित्र ने सूचना दी कि बच्ची मिल गई है। मित्र को सूचना टेलीफोन से मिली। बच्ची मेरे गाँव से १०० किमी० दूर बड़े शहर में मिली। साधक माँ पर पूर्ण विश्वास व श्रद्धा रखकर पाठ करे, सफलता निश्चित है।—श्री शान्तीलाल, भीलवाड़ा (राजस्थान)]

भू-शुद्धि, भूत-शुद्धि को क्रियाएँ कर गुरु-पूजन एवं गणेश-पूजन मानसिक रूप से करें। तदनन्तर ध्यान और न्यास के सहित **'नवार्ण मन्त्र'** का, एक माला, जप करें। **'विनियोग'** में कामना का उल्लेख करें। मन्त्र-जप के बाद ध्यान एवं न्यास के साथ **'रात्रि-सूक्त'** के ५१ पाठ करें। **'रात्रि-सूक्त'** के **'विनियोग'** में भी कामना का उल्लेख करें।

'चण्डी-कार्यालय' से प्रकाशित **'विशुद्ध चण्डी'** (श्रीदुर्गा-सप्तशती) में उक्त **'नवार्ण मन्त्र'** और **'रात्रि-सूक्त'** विनियोग एवं ध्यान सहित प्रकाशित हैं। 'रात्रि - सूक्त' के पाठ के बाद पुनः एक माला **'नवार्ण मन्त्र'** का जप करें। इस प्रकार ५१-५१ पाठ दो दिन करें। श्रद्धानुसार पाठ करें। अभीष्ट कामना अवश्य पूर्ण होगी। ५१ पाठ प्रातः और सायं दो बार में कर सकते हैं अथवा दिन में किसी भी समय सुविधानुसार दो बार आसन पर बैठकर ५१ पाठ कर सकते हैं।

(१२८)

श्री शत्रु-विध्वंसिनी स्तोत्र : दो अन्य प्रयोग

१ [उक्त **स्तोत्र**' की निम्न - लिखित प्रति **श्री सत्यार्थी विद्यासागर सरस्वती** (श्री अजयकुमार पटैरया) ७०२/१ पूर्वी निवाड़गञ्ज, दीक्षितपुरा, जबलपुर (म० प्र०) से मिली है। इसी की दूसरी

प्रति **श्री अघोरानन्द सरस्वती** (पं० श्री जगदीशनारायण तिवारी), रिटायर्ड व्याख्याता, महिला पॉलीटेक्निक, तिली रोड, सागर (म० प्र०) के पास है। दोनों प्रतियाँ शब्दशः एक समान हैं। आप दोनों ने इसका कोई अतिरिक्त विधान नहीं बताया और न ही कभी इसका प्रयोग किया है।

–श्री भैरवानन्दनाथ, सागर (म० प्र०)]

विनियोग—ॐ अस्य श्रीशत्रु - विध्वंसिनी - स्तोत्र - मन्त्रस्य ज्वलत्-पावक ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीशत्रु - विध्वंसिनी देवता। मम शत्रु-पाद-मुख-बुद्धि-जिह्वा-कीलनार्थं, शत्रु-नाशार्थं, मम स्वामि-वश्यार्थे वा जपे पाठे च विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—शिरसि ज्वलत्-पावक-ऋषये नमः, मुखे अनुष्टुप् - छन्दसे नमः, हृदि श्रीशत्रु - विध्वंसिनी-देवतायै नमः, सर्वाङ्गे मम शत्रु-पाद-मुख-बुद्धि-जिह्वा-कीलनार्थं, शत्रु-नाशार्थं मम स्वामि-वश्यार्थे वा जपे पाठे च विनियोगाय नमः।

कर-न्यास—ॐ ह्लां क्लां अंगुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्लीं क्लीं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ ह्लूं क्लूं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ ह्लैं क्लैं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ ह्लौं क्लौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्लः क्लः कर - तल - कर-पृष्ठाभ्यां नमः।

षडङ्ग-न्यास—ॐ ह्लां क्लां हृदयाय नमः, ॐ ह्लीं क्लीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्लूं क्लूं शिखायै वषट्, ॐ ह्लैं क्लैं कवचाय हुं, ॐ ह्लौं क्लौं नेत्र-त्रयाय वौषट्, ॐ ह्लः क्लः अस्त्राय फट्।

ध्यान—रक्ताङ्गीं शव-वाहिनीं त्रि-शिरसीं रौद्रां महा-भैरवीम्,
धूम्राक्षीं भय-नाशिनीं घन - निभां नीलालकाऽलंकृताम्।
खड्ग-शूल-धरीं महा-भय-रिपुध्वंसीं कृशाङ्गीं महा—
दीर्घाङ्गीं त्रि-जटीं महाऽनिल-निभां ध्यायेत् पिनाकीं शिवाम्॥

मन्त्र—ॐ ह्लीं क्लीं पुण्य-वती-महा-माये सर्व-दुष्ट-वैरि-कुलं निर्दलय क्रोध-मुखि ! महा-भयास्मि, स्तम्भं कुरु विक्रौं स्वाहा॥३००० जप॥

॥ मूल स्तोत्र ॥

खड्ग-शूल-धरां अम्बां, महा-विध्वंसिनीं रिपून्। कृशाङ्गीं च महा-दीर्घां, त्रिशिरां महोरगाम्॥
स्तम्भनं कुरु कल्याणि ! रिपु विक्रोशितं कुरु। ॐ स्वामि-वश्यकरी देवी, प्रीति-वृद्धिकरी मम॥
शत्रु-विध्वंसिनी देवी, त्रिशिरा रक्त-लोचनी। अग्नि-ज्वाला रक्त-मुखी, घोर-दंष्ट्री त्रिशूलिनी॥
दिगम्बरी रक्त-केशी, रक्त-पाणि महोदरी। यो नरो निष्कृतं घोरं, शीघ्रमुच्चाटयेद् रिपुम्॥

॥ फल-श्रुति ॥

इमं स्तवं जपेन्नित्यं, विजयं शत्रु-नाशनम्। सहस्र-त्रिशतं कुर्यात्, कार्य-सिद्धिर्न संशयः॥

जपाद् दशांशं होमं तु, कार्यं सर्षप-तण्डुलैः । पञ्च-खाद्यै घृतं चैव, नात्र कार्या विचारणा ।।
।। श्रीशिवार्णवे शिव-गौरी-सम्वादे विभीषणस्य रघुनाथ-प्रोक्तं शत्रु-विध्वंसनी-स्तोत्रम् ।।

(१२९)

२ [**सागर (म० प्र०)** के **श्री भैरवानन्दनाथ** द्वारा प्रेषित उक्त **'श्री शत्रु-विध्वंसिनी स्तोत्र'** से मिलता-जुलता स्तोत्र **भोजपुर (बिहार)** से **पं० कपिलनारायण मिश्र** जी ने भेजा है, जो यहाँ प्रकाशित है। मिश्र जी के द्वारा प्रेषित इस स्तोत्र में कहीं - कहीं भिन्नता है, साथ ही मिश्र जी ने विधान भी दिया है।—सं०]

विनियोग—ॐ अस्य श्रीशत्रु - विध्वंसिनी - स्तोत्र - मन्त्रस्य ज्वलत्-पावक ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीशत्रु-विध्वंसिनी त्रिशिरा देवता, ह्लीं बीजं, स्वाहा शक्तिः, मम अमुकामुक-शत्रु-विनाशार्थे (उच्चाटनार्थे, मध्ये विद्वेषणार्थे) जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—ॐ ज्वलत्-पावक-ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे, श्रीशत्रु-विध्वंसिनी-त्रिशिरा-देवतायै नमः हृदि, ह्लीं बीजाय नमः गुह्ये, स्वाहा-शक्तये नमः पादयोः, मम अमुकामुक-शत्रु-विनाशार्थे (उच्चाटनार्थे, मध्ये विद्वेषणार्थे वा) जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

कर-अङ्ग-न्यास—'ह्लां क्लां, ह्लीं क्लीं, ह्लूं क्लूं, ह्लैं क्लैं, ह्लौं क्लौं, ह्लः क्लः' से क्रमाङ्क (१) की भाँति । 'ॐ' नहीं है ।

ध्यान—रक्ताङ्गीं शव-वाहनां त्रि - शिरसां रौद्रां महा-भैरवीम्,
धूम्राक्षीं भव-नाशिनीं, घन-निभां नीलालङ्कार - कृताम् ।
खड्ग-शूल-धरीं महा-भय-रिपु-ध्वंसीं कृशाङ्गीं महा—
दीर्घाङ्गीं त्रिजटां महा-नील-निभां ध्यायेत् पिनाकी-कृताम् ।।

मन्त्र—ॐ ह्लीं क्लीं पुण्य-वती-महा-माये ! सर्व-दुष्ट-वैरि-निर्दलन-क्रोध-मुखि ! महा-माये ! सर्व-शत्रु-नाम-विनाशनं (उच्चाटनं, मध्ये विद्वेषणं वा) कुरु-कुरु । विक्रोध्यै स्वाहा ।

।। मूल स्तोत्र ।।

शत्रु-विध्वंसिनी रौद्री, त्रिशिरा रक्त-लोचनी, अग्नि-ज्वाला रौद्र-मुखी, भीम-दंष्ट्रा त्रिशूलिनी ।।
दिगम्बरी मुक्त-केशी, रक्त-पाणि महोदरी ।।

।। फल-श्रुति ।।

इदं स्तवं जपेन्नित्यं, विजयं शत्रु-नाशनम् । त्रि-सहस्रं जपं कुर्यात्, कार्य-सिद्धिर्न संशयः ।।

विशेष विधान—काले कम्बल के आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे। आसन के नीचे सिन्दूर से ऊर्ध्व-मुख त्रि-कोण बनाए। त्रि-कोण के बीच में **'ह्लीं'** सिन्दूर से लिखे और **'ह्लीं नमः'** से पूजन कर यह

भावना करे कि माँ की गोद में बैठा हूँ। फिर **'सङ्कल्प'** करे। तब अपने सामने सिन्दूर से **'षट् - कोण'** बनाए और उस पर लाल अक्षत रखकर सरसों के तेल (कटु) का 'दीपक' रक्खे। 'दीपक' का पूजन कर, 'दीप'-शिखा में **त्रिशिरा देवी का** आवाहन, **ध्यान** करे। षट्-कोण' के नीचे बाँईं ओर क्रम से **तीन त्रि-कोण** बनाए। बाँईं ओर वाले 'त्रि-कोण' के ऊपर एक 'पात्र' में 'तीर्थ' (मद्य) रक्खे। बीच वाले 'त्रि-कोण' के ऊपर 'पात्र' में 'शुद्धि' (मांस) रक्खे और अन्तिम 'त्रि-कोण' के ऊपर 'पात्र' में 'तृतीया' (मीन) रक्खे। तीनों पात्रों से क्रम से 'भोग' लगाए। इसके बाद **विनियोग, ऋष्यादि - न्यास** कर मन्त्र का १००० 'जप' कर **'मूल स्तोत्र' का ('शत्रु-विध्वंसिनी'** से **'महोदरी'** तक) **१०८ बार पाठ करे। 'फल-श्रुति'** का पाठ केवल पहली और अन्तिम आवृत्ति में करे।

सबसे अन्त में निम्ब - काष्ठ पर अग्नि प्रज्वलित कर, अग्नि का संस्कार - पूजन करे। फिर पीली सरसों, सेंधा नमक, काली मिर्च, सरसों का तेल, नीम की पत्ती, मद्य और मछली—सब एक में मिलाकर **दशांश** 'हवन' करे। नाम के अन्त में **चतुर्थी** विभक्ति लगाकर 'नमः स्वाहा' कहकर आहुति दे। यथा—'शत्रु-विध्वंसिन्यै नमः स्वाहा, रौद्र्यै नमः स्वाहा, त्रिशिरायै नमः स्वाहा, रक्त-लोचन्यै नमः स्वाहा, अग्नि-ज्वालन्यै नमः स्वाहा, रौद्र-मुख्यै नमः स्वाहा, दंष्ट्रायै नमः स्वाहा, त्रिशूलिन्यै नमः स्वाहा, दिगम्बर्यै नमः स्वाहा, मुक्त-केश्यै नमः स्वाहा, रक्त - पाण्यै नमः स्वाहा, महोदर्यै नमः स्वाहा।'

उल्लेखनीय है कि यह स्तोत्र वास्तव में **'द्वादश-नाम-स्तोत्र'** है।

चेतावनी एवं सावधानी—घर में यह 'प्रयोग' न करे। साधारण बात के लिए अथवा क्षणिक आवेश में यह 'प्रयोग' न करे। केवल आजमाने के लिए 'प्रयोग' न करे, अन्यथा स्वयं का अनिष्ट या परिवार का अनिष्ट हो सकता है।

(१३०)

श्रीललित-भैरव कवचम्

('कुल-शिरोमणि' श्रीधन शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा जी की कृपा से प्राप्त)

।। पूर्व-पीठिका ।।

श्रीगणेशाय नमः। श्रीनिर्वाण-भैरवाय नमः। श्रीपार्वत्युवाच—

भगवन्, देव-देवेश! सृष्टि-स्थिति-विनाश-कृत्। कथितं भवता सम्यक्, सुन्दर्याः परमोत्तमम् ।।
पूजा-विधिस्तथाऽङ्गानि, तथा काम्य-क्रियादिकं। इदानीं श्रोतुमिच्छामि, ललितेशस्य शङ्करः ।।
कवचं सार-भूतं च, सुन्दरी - प्रीति-कारकम्। विना रुद्रेण सकलं, कथितं भवता मयि ।।
शक्त्या बिना शिवः शुष्कस्तस्मात् कथय शङ्कर !' श्रीशिव उवाच—
श्रृणु त्वं कथयिष्यामि, सुन्दर्याः भैरवस्य तु ।।

ललितस्य महा - भागे ! देवानामपि दुर्लभम् । ललितेशस्य देवस्य, कवचस्य महेश्वरि !
सुंदरी ऋषिराख्याता, छंदोनुष्टुप् च देवता । ललितेशोऽत्र शक्ति स्याद्, बीजं च त्रिपुरा मता ।।
श्री-बीजं कीलकं ज्ञेयं, सुन्दरी-परितुष्टये । विनियोगस्तु देवेशि ! धर्मादिनां चतुष्टये ।।

विनियोग : ॐ अस्य श्रीललित-भैरव-कवचस्य भगवती सुन्दरी ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीललितेशः देवता, सौः बीजं, श्रीं कीलकं, धर्मार्थ - काम - मोक्ष - सिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास : भगवती-सुन्दरी-ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे, श्रीललितेश-देवतायै नमः हृदि, ऐं बीजाय नमः गुह्ये, सौः-शक्तये नमः नाभौ, श्रीं - कीलकाय नमः पादयोः, धर्मार्थ-काम-मोक्ष-सिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

ॐ ललितो मे शिरः पातु, सुन्दरी-प्राण-वल्लभः । ललाटे मे तथा नेत्रे, सुन्दरी-प्रीति-वर्द्धनः ।।
स्कन्धौ मे भैरवः पातु, त्रिपुरा-नायकोऽवतुः । त्रिपुरा-भैरवः पातु, नासा मे क्रोध-भैरवः ।।
मुखं पातु तथा चोष्ठौ, शिखां स्वच्छन्द-भैरवः । कण्ठं कपाल-माली च, पीताम्बर-धरो हृदि ।।
बाहौ चम्पक-वर्णश्च, नाभौ तु रजनी-प्रभः । उरू मे भूत-नाथोऽव्यात्, गुह्यं गुह्येश्वरस्तथा ।।
जानुनी जगतां नाथः, पादौ पद्म-वनान्तकः । इति ते कथितं देवि ! कवचं ललितस्य तु ।।

।। फल-श्रुति ।।

गुह्याद् गुह्यं सार-भूतं, त्रि-दशैरपि दुर्लभम् । रसं रसायनं चैव, गुटिकां खेचरो तथा ।।
पादुकाञ्जन-सिद्धि च, तथा वै सिद्धि-चेटिकाः । यक्षिण्याद्याश्च वेतालमन्तर्द्धानादिकं तथा ।।
कवचस्यास्य देवेशि ! सिद्ध्यन्ति स्मृति-मात्रतः । कामधेनु-समं वर्मं, चिन्तामणिरिवापरम् ।।
सुन्दरी-मन्त्र-जापीनां, कल्प-वृक्ष-समं प्रिये ! मृत-सञ्जीविनीनां च, सिद्धिस्तस्य न संशयः ।।
यो नरः पठते नित्यं सुन्दरी परि-तुष्टिदम् । कवचं ललितस्यैतत्, किं किं तस्य न सिद्ध्यति ।।
मोक्ष-सिद्धि च लभते, स्वेच्छा-मृत्युर्न संशयः । सिद्धयोऽष्टौ तस्य हस्ते, भविष्यति न संशयः ।।
अन्येषां क्षुद्र-सिद्धीनां, का कथा भूत-जातिनाम् ? गुह्यमेतन् महा-देवि ! तत्त्वातत्त्वं परात्परम् ।।
सर्वस्वं त्रिपुरा देव्या, सुन्दरी-सिद्धि-दायकम् । अदातव्यमभक्ताय, ह्यन्य-शिष्या पार्वति !
इदं कवचमज्ञात्वा, सुन्दरीं भजतेऽधमः । पदे पदे तस्य हानिः, कोटयब्दात् तन्न सिद्ध्यति ।।
शस्त्र-घातमवाप्नोति, सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ।।

।। इति श्रीरुद्र-यामले ललित-भैरव-कवचम् ।।

(१३१)

नीरोग-कारी आदित्य-हृदय

शारीरिक रोगों—विशेष कर रक्त और चर्म-सम्बन्धी रोगों के निवारण करने में
भगवान् सूर्य की उपासना चामत्कारिक रूप से फल देती है। इस सम्बन्ध में 'आदित्य-
हृदय' का प्रयोग चिर-काल से अनुभूत चला आ रहा है। प्रयोग-कर्त्ता व्यक्ति को 'रवि-
वार का व्रत' करना चाहिए। उस दिन 'नमक' का सेवन बिल्कुल न करे, मात्र फलाहार
करे। शेष दिनों में भी 'नमक' कम-से-कम ले और 'चने' का विशेष रूप से सेवन करे।

'आदित्य-हृदय' का प्रयोग करने की विधि यह है कि प्रातः-काल नींद खुलते ही
शैय्या पर बैठे-बैठे ही भगवान् सूर्य के बारह नामों का पाठ करे। यथा—

आदित्यः प्रथमं नाम, द्वितीयं तु दिवा-करः। तृतीयं भास्करः प्रोक्तं, चतुर्थं च प्रभा-करः॥
पञ्चमं च सहस्रांशुः, षष्ठं चैव त्रि - लोचनः। सप्तमं हरिदश्वं च, अष्टमं तु अहर्पतिः॥
नवमं दिन-करः प्रोक्तं, दशमं द्वादशात्मकः। एकादशं त्रि - मूर्तिश्च, द्वादशं सूर्य एव तु॥
द्वादशादित्य-नामानि, प्रातः-काले पठेन्नरः। दुःस्वप्नो नश्यते तस्य, सर्व-दुःखं च नश्यति॥
दद्रु - कुष्ट - हरं चैव, दारिद्र्यं हरते ध्रुवम्। सर्व-तीर्थ-करं चैव, सर्व-काम-फल-प्रदम्॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय, भक्त्या स्तोत्रमिदं नरः। सौख्यमायुस्तथारोग्यं, लभते मोक्षमेव च॥

इस प्रकार स्तोत्र-पाठ कर पूर्व दिशा की ओर हाथ जोड़कर १२ नामों से भग-
वान् सूर्य को नमस्कार करे। यथा—१ ॐ आदित्याय नमः, २ ॐ दिवाकराय नमः, ३ ॐ
भास्कराय नमः, ४ ॐ प्रभाकराय नमः, ५ ॐ सहस्रांशवे नमः, ६ ॐ त्रिलोचनाय नमः,
७ ॐ हरिदश्वाय नमः, ८ ॐ विभावसवे नमः, ९ ॐ दिनकराय नमः, १० ॐ द्वादशात्म-
काय नमः, ११ ॐ त्रिमूर्तये नमः, १२ ॐ सूर्याय नमः।

इसके बाद पृथ्वी को नमस्कार कर शैय्या से नीचे उतरे और नित्य-कर्म से निवृत्त
होकर प्रातः-काल अपनी नित्योपासना के बाद निम्न प्रकार 'आदित्य - हृदय' के न्यास-
प्रयोग को करे। पहले हाथ जोड़कर विनियोग पढ़े। यथा—

धिनियोग—ॐ अस्य श्रीआदित्य-हृदय-स्तोत्र-मन्त्रस्य श्रीकृष्ण ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, श्री सूर्य-नारायणो देवता, हरित-हय-रथं दिवाकरं घृणिरिति बीजं, नमो भगवते जित-वैश्वानर जात-वेदसे नमः इति शक्तिः, अंशुमानिति कीलकं, अग्नि कर्म इति मन्त्रः, मम सर्व-रोग-निवारणाय श्री सूर्यनारायण-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

इस प्रकार विनियोग पढ़कर निम्न स्तव-पाठ द्वारा अपने शरीर में भगवान् सूर्य के तेज को व्याप्त होता हुआ अनुभव करे—

अर्कं तु मूर्ध्नि विन्यस्य, ललाटे तु रविं न्यसेत् । विन्यसेत् करयोः सूर्यं, कर्णयोश्च दिवाकरम् ।।
नासिकायां न्यसेत् भानुं, मुखे वै भास्करं न्यसेत् । पर्जन्यमोष्ठयोश्चैव, तीक्ष्णं जिह्वान्तरे न्यसेत्।
सुवर्ण-रेतसं कण्ठे, स्कन्धयोस्तिग्म-तेजसम् । बाह्वोस्तु पूषणं चैव, मित्रं वै पृष्ठतो न्यसेत् ।।
वरुणं दक्षिणे हस्ते, त्वष्टारं वामतः करे । हस्तावुष्ण - करः पातु, हृदयं पातु भानुमान् ।।
स्तन-भारं महा-तेजा, आदित्यमुदरे न्यसेत् । पृष्ठे त्वर्यमणं विद्यादादित्यं नाभि-मण्डले ।।
कटयां तु विन्यसेद्धंसं, रुद्रमूर्वौ विन्यसेत् । जाह्वोस्तु गोपतिं न्यस्य, सवितारं तु जङ्घयोः ।।
पादयोस्तु विवस्वन्तं, गुल्फयोश्च प्रभाकरम् । सर्वाङ्गेषु सहस्रांशुं, दिग्-विदिक्षु भगं न्यसेत् ।।
बाह्यतस्तु तमोघ्नंसं, भगमभ्यन्तरे न्यसेत् । एष आदित्य - विन्यासो, देवानामपि दुर्लभः ।।

उक्त प्रकार स्तव का पाठ करते हुए निर्दिष्ट अङ्गों में भगवान् सूर्य के उल्लिखित नामों से 'न्यास' करने से पाठ - कर्त्ता के सभी पापों का नाश होकर 'कुष्ट, दाद' आदि रोगों का पूर्णतया निबारण होकर शरीर कान्ति-मान् होता है । 'न्यास' को निम्न प्रकार भी किया जा सकता है––

मूर्ध्नि अर्काय नमः । ललाटे रवये नमः । करयोः सूर्याय नमः । कर्णयोः दिवा-कराय नमः । नासिकायां भानवे नमः । मुखे भास्कराय नमः । ओष्ठयोः पर्जन्याय नमः । जिह्वायां तीक्ष्णाय नमः । कण्ठे सुवर्ण-रेतसे नमः । स्कन्धयोः तिग्म-तेजसे नमः । बाह्वोः पूषणाय नमः । पृष्ठे मित्राय नमः । दक्ष-हस्ते वरुणाय नमः । वाम-हस्ते त्वष्टारं नमः । हस्तौ उष्ण-कराय नमः । हृदये भानुमते नमः । स्तनयोः महा-तेजसे नमः । उदरे आदि-त्याय नमः । पृष्ठे अर्यमणाय नमः । नाभौ आदित्याय नमः । कटयां हंसाय नमः । ऊर्वोः रुद्राय नमः । जाह्वोः गोपतये नमः । जङ्घयोः सवित्रे नमः । पादयोः विवस्वते नमः । गुल्फयोः प्रभाकराय नमः । सर्वाङ्गे सहस्रांशवे नमः । दिग्-विदिक्षु भगाय नमः । बाह्ये तमोघ्नंसाय नमः । अभ्यन्तरे भगाय नमः ।

इस प्रकार 'न्यास' कर हाथ जोड़कर सूर्य भगवान् का ध्यान करे। यथा—

भास्वद् - रत्नाढ्य - मौलिः स्फुरदधर-रुचा-रञ्जितश्चारु-केशो,
भास्वान् यो दिव्य-तेजाः कर-कमल-युतः स्वर्ण - वर्णः प्रभाभिः।
विश्वाकाशावकाशो ग्रह - ग्रहण - सहितो भाति यश्चोदयाद्रौ,
सर्वानन्द - प्रदाता हरि - हर - नमितः पातु मां विश्व - चक्षुः ॥

इस प्रकार ध्यान कर निम्न मन्त्र से सूर्य भगवान् के प्रति तीन अञ्जलि जल किसी पात्र में अर्घ्य-रूप प्रदान करे—

एहि सूर्य सहस्रांशो, तेजो-राशिः जगत्-पते ! अनुकम्पय मां भक्त्या, गृहाणार्घ्यं दिवाकर !

फिर भगवान् सूर्य के 'मन्त्र' का कम-से-कम ग्यारह बार जप करे। यथा—ॐ घृणिः सूर्य आदित्य।

'मन्त्र' का जप कर चुकने पर निम्न 'सूर्य-स्तुति' का पाठ हाथ जोड़कर करे—

अग्निमीले नमस्तुभ्यमीषत्-तूर्य-स्वरूपिणे। अग्न आयाहि वीतये त्वं नमस्ते ज्योतिषां पते ॥
शन्नो देवो नमस्तुभ्यं, जगच्चक्षुर्नमोऽस्तु ते। धवलाम्भोरुहणं डाकिनीं श्यामल - प्रभाम् ॥
विश्व-दीप ! नमस्तुभ्यं, नमस्ते जगदात्मने। पद्मासनः पद्म - करः, पद्म-गर्भ-सम-द्युतिः ॥
सप्ताश्व-रथ-संयुक्तो, द्वि-भुजो भास्करो रविः। आदित्यस्य नमस्कारं, ये कुर्वन्ति दिने दिने ॥
जन्मान्तर-सहस्रेषु, दारिद्र्यं नोपजायते। नमो धर्म - विपाकाय, नमः सुकृत - साक्षिणे ॥
नमः प्रत्यक्ष-देवाय, भास्कराय नमो नमः।
उदय - गिरिमुपेतं, भास्करं पद्म-हस्तं। सकल-भुवन-रत्नं, रत्न - रत्नाभिधेयम्।
तिमिर-करि-मृगेन्द्रं, बोधकं पद्मिनीनां। सुर-वरमभि-वन्दे, सुन्दरं विश्व-रूपम् ॥
अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम। तस्मात् कारुण्य-भावेन, रक्षस्व परमेश्वर ! ॥

॥ श्रीपद्म-पुराणे श्रीकृष्णार्जुन-सम्वादे आदित्य-हृदय-स्तोत्रम् ॥

(१३२)

ऊर्ध्वाम्नायोक्त श्रीमहा-मृत्युंजय स्तोत्र-विधान

(गुप्तावतार बाबाश्री की कृपा से प्राप्त)

मन्त्र—'ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः' त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टि-वर्धनं उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् स्वः भुवर्भूः सः जूं ॐ ह्रौं ॐ।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीमहा-मृत्युञ्जय-बीज-सम्पुटित मन्त्रस्य श्रीवामदेव-कहोल-वसिष्ठा ऋषयः, पंक्ति-गायत्र्यनुष्टुप् छन्दांसि, सदा-शिव श्रीमहा-मृत्युञ्जय-रुद्राः देवताः, ह्रीं शक्तिः, श्रीं बीजं, ॐ कीलकं, ममाभीष्ट-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीवामदेव-कहोल-वसिष्ठ-ऋषिभ्यो नमो शिरसि, पंक्ति-गायत्र्य-नुष्टुप्-छन्दोभ्यो नमः मुखे, सदा-शिव श्रीमहा-मृत्युञ्जय-रुद्र-देवताभ्यो नमो हृदि, ह्रीं-शक्त्यै नमः नाभौ, श्रीं-बीजाय नमो लिंगे, ॐ कीलकाय नमो सर्वांगे, ममाभीष्ट-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

कर-न्यास (अङ्ग-न्यास)——ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूल-पाणये स्वाहा—अंगुष्ठाभ्यां नमः (हृदयाय नमः)। ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अमृत - मूर्तये मां जीवय तर्जनीभ्यां स्वाहा (शिरसि स्वाहा)। ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धि पुष्टि - वर्धनं ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्र-शिरसे जटिने स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट् (शिखायै वषट्)। ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः उर्वारुकमिव - बन्धनात् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकाय ह्रां ह्रीं अनामिकाभ्यां हुं (कवचाय हुं)। ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रि-लोचनाय ऋग्-यजुः-साम-मन्त्राय कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् (नेत्र-त्रयाय वौषट्)। ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मामृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय शूल-पाणये अग्नि-त्रयाय ज्वल-ज्वल मां रक्ष-रक्ष ॐ अघोरास्त्राय कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां फट् (अस्त्राय फट्)।

अक्षर-न्यास——ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यं नमः पूर्व - मुखे, ॐ-५ बं नमः पश्चिम-मुखे, ॐ-५ कं नमः दक्षिण-मुखे, ॐ-५ यं नमः उत्तर-मुखे, ॐ-५ जां नमः उरसि, ॐ-५ मं नमः कण्ठे, ॐ-५ हें नमः मुखे, ॐ-५ सुं नमः नाभौ, ॐ-५ गं नमः हृदि, ॐ-५ धिं नमः पृष्ठे, ॐ-५ पुं नमः कुक्षौ, ॐ-५ ष्टिं नमः लिंगे, ॐ-५ वं नमः गुदे, ॐ-५ धं नमः दक्षिणोरु-मूले, ॐ-५ नं नमः वामोरु-मूले, ॐ-५ उं नमः दक्षिणोरु-मध्ये, ॐ-५ वां नमः वामोरु-मध्ये, ॐ-५ रुं नमः दक्षिण-जानुनि, ॐ-५ कं नमः वाम-जानुनि, ॐ-५ मिं नमः दक्षिण-जानु-वृत्ते, ॐ-५ वं नमः वाम-जानु-वृत्ते, ॐ-५ बं नमः दक्षिण-स्तने, ॐ-५ धं नमः वाम-स्तने, ॐ-५ नां नमः दक्ष-पार्श्वे, ॐ-५ न्मृं नमः वाम-पार्श्वे, ॐ-५ त्यों नमः दक्षिण-पादे, ॐ-५ मुं नमः वाम-पादे, ॐ-५ क्षीं नमः दक्षिण-करे, ॐ-५ यं नमः वाम - करे, ॐ-५ मां नमः दक्ष-नासायां, ॐ-५ मृं नमः वाम-नासायां, ॐ-५ तांत् नमः मूर्ध्नि।

पद-न्यास—त्र्यम्बकं—शिरसि, यजामहे—भ्रुवोः, सुगन्धि—नेत्रयोः, पुष्टि-वर्धनं—मुखे, उर्वारुकं—गण्डयोः, इव—हृदये, बन्धनात्—जठरे, मृत्योः—लिंगे, मुक्षीय—ऊर्वोः, मां—जान्वोः, अमृतात्—पादयोः ।

व्यापक-न्यास—मूल-मन्त्र द्वारा ।

ध्यान—हस्ताम्भोज - युगस्थ कुम्भ-युगलादुद्धृत्य तोयं शिरः,
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सु - कुम्भौ करौ ।
अक्ष-सृङ् - मृग - हस्तमम्बुज - गतं मूर्द्धस्थ-चन्द्र-स्रवत्,
पीयूषार्द्र - तनुं भजे स-गिरिजं मृत्युञ्जयं त्र्यम्बकम् ।।

अर्थात् आठ हाथोंबाले भगवान् मृत्युञ्जय का मैं ध्यान करता हूँ । कलश-सहित दो हाथ उनकी गोद में हैं । ऊपर के दो हाथों से वे 'कलश' से जल ले रहे हैं । ऊपर के अन्य दो हाथों से वे अपने शिर पर अभिषेक कर रहे हैं । शेष दो हाथों में क्रमशः 'मृग' एवं 'अक्ष-माला' है । शिर पर स्थित चन्द्रमा से टपक रहे अमृत से वे आप्लावित हैं । पार्वती सहित तीन नेत्रोंवाले हैं ।

जप-विधि—१ मुष्टि, २ मृग, ३ शक्ति, ४ लिङ्ग और ५ पञ्च-मुख—ये पाँच मुद्राएँ दिखाकर १ लाख 'जप' करना चाहिए । '**मुष्टि - मुद्रा**' के लिए दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर समुन्नत करे । यह '**मुष्टि-मुद्रा**' सभी विघ्नों के समूह को नष्ट कर देती है । '**मृग-मुद्रा**' के लिए दाहिने हाथ के अँगूठे और अनामिका को मिलाकर मध्यमा के अग्र-भाग में युक्त करे और शेष अँगुलियों (तर्जनी, कनिष्ठा) को सीधी ऊँची रक्खे । '**शक्ति-मुद्रा**' के लिए दोनों हाथों की मूँठी बाँधकर बाँईं पर दाहनी रक्खे एवं उनको मस्तक से लगाए । '**लिङ्ग-मुद्रा**' के लिए दाहिने हाथ के अँगूठे को उठाकर बाँएँ अँगूठे में बाँधे और बाँएँ हाथ की अँगुलियों पर दाहिने हाथ की अँगुलियाँ चिपका दे । यह '**लिङ्ग - मुद्रा**' भगवान् शिव का सान्निध्य प्रदान करनेवाली है । शिव-तोषिणी '**पञ्च-मुख-मुद्रा**' के लिए दोनों हाथों के मणि-बन्धों को युक्त कर अँगुलियों के अग्र-भाग को चिपकाए ।

हवन—१ बेल, २ तिल, ३ खीर, ४ घी, ५ दूध, ६ दही, ७ दूर्वा, ८ बट की समिधा, ९ पलाश की समिधा एवं १० खैर की समिधा—इन दश द्रव्यों से 'होम' करे । तीनों समिधाओं को घी, शहद और शक्कर में डुबोकर 'हवन' करे ।

विशेष काम्य हवन-विधि—(१) 'रोग'-निवारण, 'शत्रु'-नाशार्थ, 'सम्पत्ति'-प्राप्ति एवं पुत्र-पौत्रों के सहित आमोद-प्रमोद-पूर्वक 'शतायु'-प्राप्ति के लिए अपने जन्म-नक्षत्र से

२० वें या २१ वें नक्षत्र में गुड़च अथवा गुड़ची (गिलोय) की चार अंगुल लम्बी समिधाओं से 'हवन' करे। (२) 'लक्ष्मी'-प्राप्ति के लिए बिल्व वृक्ष की समिधाओं से 'हवन' करे। (३) 'ब्रह्मचर्य' - वृद्धि के लिए पलाश (ढाक) की समिधाओं से 'हवन' करे। (४) 'कान्ति' - वृद्धि के लिए खैर की समिधाओं से 'हवन' करे। (५) 'अधर्म'-नाश के लिए तिल से तथा 'शत्रु'-नाश के लिए 'सरसों' से होम करे। (६) कान्ति, लक्ष्मी तथा कीर्ति के लिए 'खीर' से होम करे। (७) 'पर-कृत्य', 'अप-मृत्यु'-नाश एवं विवादों से विजय-प्राप्ति के लिए 'दही' से होम करे। (८) लक्ष्मी, आरोग्यता एवं कीर्त्ति—तीनों की प्राप्ति के लिए अपनी वर्ष-गाँठ के दिन त्रि-मधुर (१ घी, २ शहद और शक्कर) के साथ खीर से होम करे। (९) सभी प्रकार के रोग, अप-मृत्यु, भय को दूर करने के लिए अपने जन्म-नक्षत्र से ११ वें या २१ वें नक्षत्र में गुडूची और वकुल (मौल-श्री) की समिधाओं से हवन करे।

आहुति - संख्या—उक्त सभी प्रकार के काम्य हवनों में आहुतियों की संख्या १०,००० है।

[प्रस्तुत 'प्रयोग' गुप्तावतार बाबाश्री की दुर्लभ पाण्डुलिपियों के आधार पर प्रकाशित किया जा रहा है। 'मन्त्र-महोदधि' में यह 'प्रयोग' विस्तार से पीठ-पूजा, आवरण-पूजा सहित दिया गया है।—सं०]

(१३३)

त्रिकाल-दर्शक गौरी-शिव-मन्त्र

'वृहत् पाराशर होरा शास्त्र' (क्षेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई द्वारा सं० १९७२ में प्रकाशित) के अन्तिम १८ वें अध्याय में **'मैत्रेय ऋषि'** अपने गुरुदेव **'महर्षि पराशर'** से पूछते हैं— हे भगवन्! कलि-युग में लोगों की बुद्धि मन्द पड़ जायगी। उस दशा में वे ज्योतिर्विद्या का ज्ञान कैसे पा सकेंगे?

उत्तर में महर्षि पराशर जी ने मैत्रेय ऋषि से कहा—

कृते युगे तु धर्मस्य, पूर्णत्वात् तपसाऽन्वितः। सर्वे जानन्ति भूतं च, भवद्-भावि द्विजोत्तम!।।
त्रेताया तपसा युक्ताः, केचिज्जानन्ति वै द्विजाः। पश्यन्ति द्वापरे शास्त्र-ज्ञानेन तपसाऽपि च।।
कलौ युगे तु धर्मस्य, पाद-मात्र-व्यवस्थितिः। तपः शक्त्या तु तज्-ज्ञातुं, न शक्ता मानवा भुवि।।

अर्थात् हे श्रेष्ठ द्विज! **'सत्य-युग'** में सभी लोग तपस्या करते हैं। अतः वे भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों 'काल' की बात जानते हैं और **'त्रि-कालज्ञ'** कहलाते हैं। **'त्रेता'** और **'द्वापर'-युग** में कुछ द्विज तपोबल से और कुछ शास्त्र-ज्ञान द्वारा 'काल' की बातें जान लेते हैं किन्तु **'कलि-युग'** में **'धर्म'** केवल एक चरण से ही रहता है, **'धर्म'** का अभाव हो जाता है। अतः पृथ्वी पर **'काल'** को जाननेवाला कोई मनुष्य नहीं रह जाता।

तथाऽत्र परमः शम्भुर्लोकानुग्रह-कांक्षया । लक्षी - कृत्य निजां शक्ति, विद्यामाधात् स ईश्वरः ।।
कलावधि च भक्तानां, त्रिकाल - ज्ञान - दायिनी । वेदादिर्वाग्भवं गौरि, वद-द्वयमथो गिरि ।।
परमैश्वर्य - सिद्धयर्थं, वाग् - भवं स्यादयं मनुः । सर्वज्ञेति - पदं पूर्वं, नाथ तं पार्वती-पते ।।
सर्व-लोक-गुरो पश्चाच्छिवेति द्वयमक्षरम् । शरणं तु पदं पश्चात्, त्वां प्रपन्नोऽस्मि तत्-परम् ।।
पालयेति पदं ज्ञान, प्रदापय ततः परम् ।।

भगवान् सदा - शिव ने लोकोपकार की इच्छा से अपनी ज्ञान - शक्ति का स्मरण किया और भक्तों को 'त्रिकाल - ज्ञान' करनेवालो 'विद्या' का उपदेश किया । उस **'विद्या'** का मन्त्रोद्धार निम्न प्रकार है—

वेदादि (ॐ), वाग्भव (ऐं), 'गौरि', वद-द्वय (वद वद), गिरि, परमैश्वर्य-सिद्धयर्थं, वाग्भव (ऐं) अर्थात् **'ॐ ऐं गौरि वद वद गिरि परमैश्वर्य सिद्धयर्थं ऐं'** । यह **'शक्ति-मन्त्र'** हुआ ।

'सर्वज्ञ, नाथ, पार्वती-पते, सर्व-लोक-गुरो, शिव ! शरणं, त्वं प्रपन्नोऽस्मि, पालय, ज्ञानं प्रदापय' यह **'शिव-मन्त्र'** हुआ ।

इस प्रकार शक्ति-शिवात्मक यह मन्त्र **'महा-विद्या'**—रूप में प्रकट हुआ । इसके **'ऋषि'** स्वयं **'श्री दक्षिणामूर्ति शिव'** हुए । इसके देवता **'गौरी परमेश्वरी एवं सर्वज्ञ शिव'** हुए । इसके दो छन्द हुए **'गायत्री'** और **'अनुष्टुप्'** । इस महा - विद्या का विनियोग' बना—**'त्रिकाल - दर्शक - ज्योतिशशास्त्र-ज्ञान - प्राप्तये'** ।

यहाँ उक्त **'त्रिकाल - दर्शक'** मन्त्र की पूरी विधि इस प्रकार दी जा रही है कि जिज्ञासु लोग इसके अनुसार साधना कर लाभ उठा सकें—

विनियोग—अनयोः शक्ति-शिव-मन्त्रयोः श्री दक्षिणामूर्ति ऋषिः, गायत्र्यनुष्टुभौ छन्दसी, गौरी परमेश्वरी सर्वज्ञः शिवश्च देवते, मम त्रिकाल-दर्शक-ज्योतिशशास्त्र-ज्ञान-प्राप्तये जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीदक्षिणामूर्ति-ऋषये नमः शिरसि, गायत्र्यनुष्टुप् - छन्दोभ्यां नमः मुखे, गौरी-परमेश्वरी सर्वज्ञः शिवश्च देवताभ्यां नमः हृदि, मम त्रिकाल-दर्शक-ज्योतिशशास्त्र-ज्ञान-प्राप्तये जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ ।

कर-न्यास (अङ्ग-न्यास)—ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः (हृदयाय नमः), ऐं तर्जनीभ्यां नमः (शिरसे स्वाहा), ऐं मध्यमाभ्यां वषट् (शिखायै वषट्), ऐं अनामिकाभ्यां हुं (कवचाय हुं), ऐं कनिष्ठाभ्यां वौषट् (नेत्र-त्रयाय वौषट्), ऐं कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां फट् (अस्त्राय फट्) ।

ध्यान—उद्यानस्यैक - वृक्षाधः, परे हैमवते द्विज !—

क्रीडन्तीं भूषितां गौरीं, शुक्ल-वस्त्रां शुचि-स्मिताम् ।
देव-दारु-वने तत्र, ध्यान-स्तिमित-लोचनम् ।।
चतुर्भुजं त्रि - नेत्रं च, जटिलं चन्द्र - शेखरम् ।
शुक्ल-वर्णं महा-देवं, ध्याये परममीश्वरम् ।।

मानस-पूजन—लं पृथिवी-तत्त्वात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः। हं आकाश-तत्त्वात्म पुष्पं समर्पयामि नमः। यं वायु - तत्त्वात्मकं धूपं घ्रापयामि नमः। रं अग्नि - तत्त्वात्मकं दीपं दर्शयामि नमः। वं अमृत-तत्त्वात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि नमः। शं शक्ति - तत्त्वात्मकं ताम्बूलं समर्पयामि नमः।

शक्ति-शिवात्मक मन्त्र-जप—ॐ ऐं गौरि ! वद वद गिरि परमैश्वर्य-सिद्धयर्थं ऐं।

सर्वज्ञ-नाथ, पार्वती-पते, सर्व-लोक-गुरो, शिव ! शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि। पालय, ज्ञानं प्रदापय।

इस **'शक्ति-शिवात्मक मन्त्र'** के पुरश्चरण की आवश्यकता नहीं है। केवल जप से ही अभीष्ट-सिद्धि होती है। अतः यथा-शक्ति प्रतिदिन जप कर जप-फल को देवता को समर्पित कर देना चाहिए।

—ज्योतिषाचार्य श्री योगेशनारायण सिंह, २८ महात्मा गांधी मार्ग, सिविल लाइंस, इलाहाबाद-१

(१३४)

श्रीधनदा देवी पटल

[ककरा, दुबावल, इलाहाबाद के पूज्य पं० कृष्णानन्दजी मिश्र वैद्य की कृपा से प्राप्त]

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि, धनदां सर्व-सिद्धिदां। यामाराध्य महा-देवि ! कुबेरो धन-नायकः।।
यत्प्रसादात् महेशानि ! रमेच्च त्रि-दशेश्वरः। तां विद्यां परमेशानि ! श्रृणुष्व वर-वर्णिनि !।।

।। मन्त्रोद्धार ।।

दान्तं विन्दु-समारूढं, महा-मायां हरि-प्रियां। रति-प्रिये ततः पश्चाद्, वह्नि-जायां ततः प्रिये !।।
नवाक्षरो महा-मन्त्रो, द्रुतं सिद्धि-प्रदायकः (धं ह्रीं श्रीं रति-प्रिये स्वाहा) ।।३
अनया सदृशी विद्या, अनेन सदृशो जपः। अनया सदृशी सिद्धिर्मम ज्ञाने न वर्त्तते।।
शत-वक्त्रो यदि भवेद्, भावं वक्तुं न शक्यते। पञ्च-वक्त्रेण देवेशि ! कथ्यते किं मयाऽधुना।।

।। विनियोग और न्यास ।।

कुबेरोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः, पंक्तिश्छन्द उदाहृतं। देवता धनदा देवी, सर्व-सिद्धि-प्रदायिनी।।
धर्मार्थ-काम-मोक्षाख्य-चतुर्वर्ग-फल-प्रदा। षड्-दीर्घ-मायया चैव, षडङ्ग-न्यासं समाचरेत्।।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि, येन सिद्धो भवेन्नरः।

ध्यान–देवीं काञ्चन-कान्तिमिन्दु - विमलां रक्तांशुकच्छादिताम्,
हेमाम्भोज-युगाभयांकुश-करां रत्नोल्लसत्-कुण्डलाम् ।
वन्दे सर्व - भयापहन्त्रीं जगतां पापाप - हारीं पराम्,
स्वकीयात्म - स्वरूपां तां भावये चित् - स्वरूपिणीम् ।।

।। मानस-पूजा आदि ।।

एवं ध्यात्वा महेशानि ! मानसैः पूजनं चरेत् । अर्घ्य-पात्रं स्थापयित्वा, धेनु-योनिं प्रदर्शयेत् ।
पीठ-पूजां ततः कृत्वा, सुधीः पीठ-मनुं जपेत् ।।१
आधार-शक्तिमारभ्य, यजेत् पद्मासनं प्रिये ! प्रणवादि-नमोऽन्तेन, पूजयेत् साधकाग्रणी ।।२
पुनर्ध्यात्वा महेशानि ! मूलेनावाहनं चरेत् । खड्गेन च सम्पूज्य, जोत्र-न्यासं समाचरेत् ।।३
मूल-मन्त्रं समुच्चार्य, ततो द्रव्यं समुच्चरेत् । देवतायै ततः पश्चाद्, योगात्मक-मनुं स्मरेत् ।।४
पाद्याद्यैः पूजयेद् देवीं, यथा-विभव-विस्तरैः । यन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि, तज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।।

।। यन्त्रोद्धार ।।

नव-योन्यात्मकं चक्रं, विलिखेत् कर्णिकोपरि । दिग्-दलं पद्ममालिख्य, चतुरस्रं ततो बहिः ।।
कोणेषु वज्रं संलिख्य, मध्ये बीजं समुल्लिखेत् । इदं यन्त्रं महेशानि ! साक्षाद् देवी-स्वरूपकं ।।

।। यन्त्र-पूजन आदि ।।

लक्ष्मीं पद्मां पद्मालयां, श्रियं च वा हरि-प्रियां । शिवां च कमलां चैव, अब्जां च चञ्चलां तथा ।
लोलां च प्रणवाद्येता, नमोऽन्तेन प्रपूजयेत् । पुनर्मध्ये ततो देवीं, पूजयेत् साधकोत्तमः ।।
प्राणायामं ततः कृत्वा, यथा-शक्ति जपं चरेत् । गुह्यादिकं जप-फलं, देव्या हस्ते समर्पयेत् ।।
प्राणायामं ततः कृत्वा, प्रणामाष्टाङ्गमाचरेत् । अथोत्थाय महेशानि ! विशेषार्घ्यं निवेदयेत् ।।
आत्म-समर्पणं कृत्वा, विहरेच्च यथेच्छया । किञ्चिन्नैवेद्यं स्वीकृत्य, निर्माल्यं धारयेत् ततः ।।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं, दशांशं होममाचरेत् । तद् - दशांशं तर्पणं च, अभिषेकं दशांशकम् ।।
अतः कुर्यान्महेशानि ! दशांशं विप्र-भोजनम् । एवं कृत्वा महेशानि ! साक्षात् सुर-गुरु प्रभुः ।।
तस्य हस्ते महेशानि ! सर्व-सिद्धिर्न संशयः । नित्यं नित्यं महेशानि ! ईश्वरो यच्छते धनम् ।।
लक्ष्मी सरस्वती चैव, निवसेन्मन्दिरे सुखे । इह लोके महेशानि ! महेन्द्रो जायते क्षितौ ।।
मोक्षाकांक्षी महेशानि ! महा-मोक्षमवाप्नुयात् । भोगार्थी लभते भोगान्, यथेच्छं वर्ततो चिरात् ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा, मृतो गच्छेद्धरेः पदम् । मृतो राज-कुले भूयो, जन्म चाप्नोति साधकः ।।

।। धनदा स्तोत्र ।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि, धनदा-स्तोत्रमुत्तमम् । यद् गुप्तं सर्व-तन्त्रेषु, इदानीं तत् प्रकाशितम् ।।
नमः सर्व-स्वरूपे च, नमः कल्याण-दायिके ! महा-सम्पत्-प्रदे देवि ! धनदायै नमोऽस्तु ते ।।

महा-भोग-प्रदे देवि ! महा-काम-प्रपूरिते ! सुख-मोक्ष-प्रदे देवि ! धनदायै नमोऽस्तु ते ।।
ब्रह्म-रूप-सदानन्दे ! सदानन्द-स्वरूपिणि ! द्रुत-सिद्धि-प्रदे देवि ! धनदायै नमोऽस्तु ते ।।
उद्यत्-सूर्य-प्रकाशाभे, उद्यदादित्य - मण्डले ! शिव-तत्त्व-प्रदे देवि ! धनदायै नमोऽस्तु ते ।।
विष्णु-रूपे विश्व-मते ! विश्व-पालन-कारिणि ! महा-सत्त्व-गुणाक्रान्ते ! धनदायै नमोऽस्तु ते ।।
शिव-रूपे शिवानन्दे ! कारणानन्द-विग्रहे ! विश्व-संहार-रूपे च, धनदायै नमोऽस्तु ते ।।
पञ्च-तत्त्व-स्वरूपे च, पञ्चाचार-सदा-रते ! साधकाभीष्टदे देवि ! धनदायै नमोऽस्तु ते ।।

।। फल-श्रुति ।।

इदं स्तोत्रं मया प्रोक्तं, साधकाभीष्ट-दायकम् । यः पठेत् पाठयेद् वापि, स लभेत् सकलं फलं ।।
त्रि-सन्ध्यं यः पठेन्नित्यं, स्तोत्रमेतत् समाहितः । स सिद्धिं लभते शीघ्रं, नात्र कार्या विचारणा ।।
इदं रहस्यं परमं, स्तोत्रं परम - दुर्लभम् । गोपनीयं प्रयत्नेन, स्व - योनिरिव पार्वति ! ।।
अप्रकाश्यमिदं देवि ! गोपनीयं परात्परम् । प्रपठान्नात्र सन्देहो, धनवान्जायते चिरात् ।।

।। धनदा कवच ।।

।। श्रीदेव्युवाच ।।

धनदाया महा-विद्या, कथिता न प्रकाशिता । इदानीं श्रोतुमिच्छामि, कवचं मन्त्र पूर्व-सूचितम् ।

।। श्रीशिव उवाच ।।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि, कवचं मन्त्र-विग्रहम् । सारात् सार-तरं देवि ! कवचं मन्मुखोदितम् ।।
धनदा-कवचस्यास्य, कुबेर ऋषिरीरितः । पंक्तिश्छन्दो देवता च, धनदा सिद्धिदा सदा ।।
धर्मार्थ-काम-मोक्षेषु, विनियोगः प्रकीर्तितः ।।
'धं'बीज मे शिरः पातु, 'ह्रीं'बीजं मे ललाटकम् । 'श्रीं'बीजं मे मुखः पातु,'र'कारं हृदि मेऽवतु ।
'ति'कारं पातु जठरं, 'प्रि'कारं पृष्ठतोऽवतु । 'ये'कारं जङ्घयोर्युग्मे, 'स्वा'कारं पाद-मूलके ।।
शीर्षादि-पाद-पर्यन्तं, 'हा'कारं सर्वतोऽवतु । इत्येतत् कथितं कान्ते ! कवचं सर्व-सिद्धिदम् ।।
गुरुमभ्यर्च्य विधि-वत्, कवचं प्रपठेद् यदि । शत-वर्ष-सहस्राणां, पूजायाः फलमाप्नुयात् ।।
गुरु-पूजां बिना देवि ! नहि सिद्धिः प्रजायते । गुरु-पूजा - परो भूत्वा, कवचं प्रपठेत् ततः ।।
सर्व-सिद्धि-युतो भूत्वा, विचरेद् भैरवो यथा । प्रातः-काले पठेद् यस्तु, मन्त्र-जाप-पुरस्सरम् ।।
सोऽभीष्ट-फलमाप्नोति, सत्यं सत्यं न संशयः । पूजा-काले पठेद् यस्तु, देवीं ध्यात्वा हृदम्बुजे ।।
षण्मासाभ्यन्तरे सिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा । सायं-काले पठेद् यस्तु, स शिवो नात्र संशयः ।।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां, स्वर्णस्थां धारयेद् यदि । पुरुषो दक्षिणे बाहौ, योषिद् वाम-भुजे तथा ।।
सर्व-सिद्धि-युतो भूत्वा, धनवान् पुत्रवान् भवेत् ।
इदं कवचमज्ञात्वा, यो भजेद् धनदां शुभे ! स शस्त्र-घातमाप्नोति, सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ।।

कवचेनावृतो नित्यं, यत्र यत्रैव गच्छति । अतएव महा - देवि ! स पूज्यो नात्र संशयः ।।

।। धनदा प्रयोग ।।

।। श्रीदेव्युवाच ।।

अहो पूज्य महा-देव ! संसारार्णव-तारक ! सर्व-योग-मयस्त्वं हि, शरणागत - वत्सलः ।।
केनोपायेन देवेश ! शीघ्रं सिद्धा भवन्ति हि । तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि, कथ्यतां परमेश्वर ! ।।

।। श्रीशिव उवाच ।।

प्रेत-भूमौ तु सप्ताहं, प्रत्यहं परमेश्वरि ! दिक्-सहस्रं जपेद् विद्यां, तदा सिद्धिर्न संशयः ।।
अथवा परमेशानि ! शवमानीय यत्नतः । वितस्ति-मात्र-खाते तु, पातनं हट्ट-मन्दिरे ।।
अमावास्यां समारभ्य, यावच्छुक्लाष्टमो भवेत् । प्रत्यहं प्रजपेद् विद्यां, गजान्तक-सहस्रकम् ।।
तदा सिद्धो भवेद् देवी, नान्यथा मम भाषितम् ।।
यदेतत् कथितं सर्वं, तत्त्व-ज्ञानं सुरेश्वरि ! तत्त्व-ज्ञानं बिना देवि ! नहि सिद्धिः प्रजायते ।।
अथवा पर-यत्नेन, केवलं शक्ति-योगतः । पूर्वं चतुष्टयं देवि ! समानीय प्रयत्नतः ।।
तस्यै दत्त्वा स्वयं पीत्वा, प्रजपेद् यदि साधकः । तदा सिद्धि लभते देवि ! सत्यं सत्यं न संशयः ।।
यत्र यत्र विनिर्दिष्टं, जप-कार्ये सुरेश्वरि ! तत्र तत्र महेशानि ! गजान्तक-सहस्रकम् ।।

श्रीधनदा देवी के इस दुर्लभ **'पटल'** से **धनदा देवी** की उपासना से सम्बन्धित पाँच बातों का ज्ञान होता है—१. **मन्त्रोद्धार** द्वारा प्रमाणित **मूल-मन्त्र** (नवाक्षर), २. **यन्त्रोद्धार** द्वारा प्रमाणित नव - योन्यात्मक **पूजन - यन्त्र,** ३. पूजन - यन्त्र की **अर्चना - विधि** एवं मन्त्र के **पुरश्चरण** का विधान, ४. अभीष्ट - फल - दायक **धनदा स्तोत्र** और ५. मन्त्रात्मक **धनदा कवच** । इस **पञ्चाङ्गोपासना** के साथ ही **'धनदा मन्त्र'** के प्रयोग की विशेष विधि भी दी गई है । निस्सन्देह, परम पूज्य ८४ वर्षीय वयोवृद्ध ऋषि-कल्प सिद्ध साधक **पण्डित कृष्णानन्द जी मिश्र वैद्य** द्वारा इस **अप्रकाशित दुर्लभ पाण्डुलिपि** का प्रदान किया जाना स्तुत्य है । सारा आध्यात्मिक जगत् आपका चिर ऋणी रहेगा क्योंकि आप उदारता-पूर्वक इसी प्रकार अप्राप्य **मन्त्र-तन्त्र-यन्त्रात्मक** साहित्य **'चण्डी कार्यालय'** को उपलब्ध कराने की महती कृपा कर रहे हैं । पाठकों की सुविधा के लिए **श्रीधनदा देवी** की उक्त **पञ्चाङ्गोपासना का विवरण** हिन्दी में भी यहाँ दिया जा रहा है—

विनियोग—ॐ अस्य श्रीधनदा - देवी - मन्त्रस्य श्रीकुबेरः ऋषिः, पंक्तिः छन्दः, सर्व-सिद्धि-प्रदायिनी श्रीधनदा देवी देवता, ह्रीं बीजं, धर्मार्थ-काम-मोक्ष-फल-प्राप्त्यर्थं जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीकुबेर-ऋषये नमः शिरसि । पंक्ति-छन्दसे नमः मुखे । सर्व-सिद्धि-प्रदायिनी-श्रीधनदा-देवी-देवतायै नमः हृदि । ह्रीं-बीजाय नमः गुह्ये । धर्मार्थ-काम-मोक्ष-फल-प्राप्त्यर्थं जपे विनि-योगाय नमः सर्वाङ्गे ।

षडङ्ग-न्यास—ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः (हृदयाय नमः) । ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः (शिरसे स्वाहा) । ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः (शिखायै वषट्) । ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः (कवचाय हुम्) । ह्रौं कनिष्ठाभ्यां नमः (नेत्र-त्रयाय वौषट्) । ह्रः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः (अस्त्राय फट्) ।

ध्यान—(देखें पृष्ठ २५०) श्रीधनदा देवी के शरीर की कान्ति स्वर्ण के समान सुनहली है। वे चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हैं और लाल रेशमी वस्त्र धारण किए हैं। दो हाथों में स्वर्ण-कमल, और अन्य दो हाथों में अभय मुद्रा तथा अंकुश लिए हैं। कानों में रत्न - जटित कुण्डल हैं। वे सभी प्रकार के भयों को दूर करती हैं, संसार के पापों को नष्ट करती हैं और चैतन्य - स्वरूपा तथा साधक की अपनी आत्मा से तादात्म्य रखनेवाली हैं। ऐसी परमा देवी धनदा की मैं वन्दना करता हूँ।

ध्यान करने के बाद मानस पूजा करे। यथा—**लं पृथ्वी-तत्त्वात्मकं गन्धं, हं आकाश-तत्त्वात्मकं पुष्पं, यं वायु-तत्त्वात्मकं धूपं, रं अग्नि-तत्त्वात्मकं दीपं, वं अमृत - तत्त्वात्मकं नैवेद्यं, सं सर्व-तत्त्वात्मकं ताम्बूलं समर्पयामि नमः।**

अब **'अर्घ्य-पात्र'** स्थापित कर उसे धेनु एवं **योनि-मुद्राएँ** दिखाए। **पीठ-पूजा** कर **पीठ-मन्त्र** का जप करे। **आधार-शक्ति** से लेकर **पद्मासन** तक की पूजा करे। पूजन-मन्त्र के आदि में **प्रणव** (ॐ) और अन्त में **'नमः'** लगा ले। तब पुनः **ध्यान** कर मूल-मन्त्र से **धनदा देवी** का आवाहन करे। खड्ग-माला से पूजन कर **जीव-न्यास** करे। यथा-शक्ति **पाद्यादि** उपचारों से पूजन करे—**मूलं अमुक-द्रव्यं श्रीधनदा-देवतायै समर्पयामि** इत्यादि।

श्रीधनदा देवी का पूजन-यन्त्र—'नव-योन्यात्मक' यन्त्र अङ्कित करे। उसके बाहर **अष्ट-दल कमल** बनाकर भूपुर बनाए। कोणों में **वज्र** अङ्कित करे और मध्य में **बीज** लिखे।

उक्त यन्त्र में—१ लक्ष्मी, २ पद्मा, ३ पद्मालया, ४ श्री, ५ हरि-प्रिया, ६ शिवा, ७ कमला, ८ अब्जा, ९ चञ्चला, १० लोला का पूजन आदि में 'ॐ' और अन्त में **'नमः'** लगा कर करे। मध्य में पुनः देवी का पूजन कर साधक प्राणायाम करे। तब यथा-शक्ति **मन्त्र-जप** करे।

मन्त्र—धं ह्रीं श्री-रति-प्रिये स्वाहा।

जप-फल देवी को **'गुह्यातिगुह्य-गोप्त्री०'** इत्यादि मन्त्र से समर्पित करे। पुनः प्राणायाम कर, अष्टाङ्ग प्रणाम करे। तब उठकर विशेषार्घ्य निवेदन कर आत्म-समर्पण-पूर्वक विहार करे। अन्त में कुछ नैवेद्य स्वीकार कर निर्माल्य सिर पर धारण करे।

उक्त मन्त्र के **पुरश्चरण में एक लाख** जप का विधान है। उतना जप कर **दशांश-क्रम से होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मण-भोजन** आदि सम्पन्न करनेवाला साक्षात् देव-गुरु **बृहस्पति** के समान तेजस्वी एवं सर्व-सिद्धि-सम्पन्न होता है।

पुरश्चरण करने के साथ ही नित्य भगवती धनदा देवी की स्तुति करनी चाहिए और अपनी रक्षा के लिए उनके **कवच-स्तोत्र** का पाठ करना चाहिए। ये दोनों ही संस्कृत में सरल समझने योग्य हैं। आशा है, पाठक इस सबसे लाभ उठाएँगे।

श्री एम० जे० वैद्य, ३।३५५ खत्रीवाड, वलसाड़-३९६४४५ (गुजरात)

'...**'चण्डी'** मासिका पत्रिका में प्रकाशित **'साधन-माला'** बहुत उपयोगी है। हम जैसे साधकों के लिए यह महत्त्व-पूर्ण मार्ग-दर्शक बन गई है। इससे बहुत-सी गुप्त रहस्य-मय जानकारी भी मिलती रहती है। हमारी प्रार्थना है कि **'साधन-माला' 'चण्डी'** में आगे भी प्रस्तुत करते रहें।...'

जिज्ञासु के पत्र

अलीगढ़ (उ० प्र०) से एक बन्धु अपने कृपा - पत्र दिनाङ्क ७-६-६३ में लिखते हैं—

"...आपके सभी अङ्क बहुत अच्छे रहे।... हम आश्विन शुक्ल पक्ष में चण्डी-उपासना, पाठ-पूजा-जप नव-दुर्गाओं के सम्बन्ध में करना चाहते हैं। इस अनुष्ठान का विधान क्या हो ? किस प्रकार से हो ? क्या-क्या मन्त्र, क्या - क्या जाप, क्या - क्या पाठ किया जाय ? सभी अच्छे प्रकार से हो। पूर्ण जानकारी पत्र द्वारा संशोधन करके भेजें। हमारा हार्दिक विचार है कि इस बार नव-दुर्गाओं में पाठ चण्डी का हो, जाप भी हो, हवन भी हो, ब्रह्म-भोज भी हो। कृपया इस सब पर विचार करके अच्छे कागज पर पूर्ण विवरण नव - दुर्गाओं का लिखकर शीघ्र भेजें, क्योंकि सामान की भी तैयारी करनी है।..."

[धन्य हैं हमारे ये जिज्ञासु बन्धु ! शारदीय नवरात्र के प्रति इनकी श्रद्धा-भक्ति की भावना प्रशंसनीय है, किन्तु साथ ही दुःख भी होता है कि आज देश में 'कुल-पुरोहितों की परम्परा' का कैसा ह्रास हो गया है ! यदि आप बन्धु के कोई 'कुल-पुरोहित' होते या कोई भी 'मार्ग-दर्शक पण्डित' होते तो इस प्रकार का पत्र कदापि न लिखते। 'चण्डी'-कार्यालय द्वारा 'वैदिक' और 'पौराणिक' दोनों प्रकार के 'नवरात्र-विधान' वर्षों से प्रकाशित हैं। 'नवरात्र-कल्पतरु' नाम का एक ग्रन्थ भी उपलब्ध है, किन्तु इन सबको ध्यान से पढ़े कौन ? यदि कोई पढ़े भी, तो 'संस्कार-हीन' होने से कुछ समझ पाना उसके लिए कठिन होता है। इसी से 'गुरुदेव' की आवश्यकता होती है, किन्तु सद् - गुरुओं का भी अभाव हो गया है—सं०]

पटना (बिहार) से पण्डित ताराकान्त मिश्र ने बहुत सी जिज्ञासाएँ की हैं। कुछ जिज्ञासाएँ यहाँ समाधान सहित प्रस्तुत हैं—

जिज्ञासा (१) 'चण्डी' वर्ष ५२, अङ्क ३, जून ६३ में प्रकाशित **हिन्दी सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ—** में विनियोग, ऋष्यादि-न्यास एवं कर-न्यास तथा अङ्ग-न्यास नहीं हैं। क्या बिना विनियोग एवं न्यास किए फल की प्राप्ति या शुद्ध पाठ होगा ?

जिज्ञासा (२) 'चण्डी', वर्ष ५१, अङ्क ४, **साधन-माला** के अन्तर्गत **'ऋण-हर-धन-प्रद मङ्गल-स्तोत्र'** प्रकाशित हुआ है। इस स्तोत्र का पाठ प्रातः उठते ही शैय्या पर करने के लिए लिखा है। कृपया स्पष्ट करें। शैय्या पर केवल स्तोत्र एवं फल-श्रुति का पाठ करना है या पूरा विनियोग से अभिषेक तक ?

जिज्ञासा (३) 'चण्डी' वर्ष ५१, अङ्क १, **साधन-माला** के अन्तर्गत **'सर्व-सिद्धि-प्रद श्री गणेश कवच'** में लिखा है कि भोज-पत्रादि में इस 'कवच' को विधि-वत् लिखकर यन्त्र-बद्ध कर धारण करने से धारण करनेवाले को सभी फल मिलते हैं। **यन्त्र-बद्ध** का तात्पर्य क्या है ? कृपया स्पष्ट करें।

जिज्ञासा (४) चालीसा एवं अन्य धार्मिक पुस्तकों में श्लोक के अन्त में, रचयिता अथवा कवि का नाम रहता है। पाठ-कर्त्ता पाठ में कवि रचयिता के नाम का पाठ करे या उसके स्थान पर अपना नाम लेकर पाठ करे ? कृपया स्पष्ट करें।

यथा, **विनय-पत्रिका** में श्रीगणेश-स्तुति के अन्तर्गत 'माँगत तुलसिदास कर जोरे' का उल्लेख है। **विनय-पत्रिका** में 'सूर्य-स्तुति', 'शिव-स्तुति' में भी ऐसा ही उल्लेख है। **हनुमान-चालीसा, दुर्गा-चालीसा**, श्रीराम-चालीसा, हनुमान-बाहुक में भी ऐसे ही कवि के नाम का उल्लेख है।

[(१) **'हिन्दी सप्त-श्लोकी'** में विनियोग आदि करने की आवश्यकता नहीं है। केवल श्रद्धा और विश्वास के साथ पाठ करने से ही पाठ-कर्ता का कल्याण होता है।... (२) केवल **'स्तोत्र'** का ही पाठ करना है। फल-श्रुति के पढ़ने की भी आवश्यकता नहीं है। **'विनियोग'** से **'अभिषेक'** तक का प्रयोग विधिवत् आसन पर बैठकर ही करना चाहिए।... (३) भोज-पत्र पर लिखकर उसे 'यन्त्र-बद्ध' कराना है अर्थात् उसे **'ताबीज'** के रूप में धारण करना चाहिए।... (४) सिद्ध कवियों द्वारा रचित चालीसा आदि का पाठ करते समय भावना यह रखनी चाहिए कि 'जिस प्रकार इस रचना के माध्यम से प्रार्थना कर कवि ने अपने अभीष्ट को प्राप्त किया या जिस प्रकार देवता की कृपा उन पर हुई, उसी प्रकार मेरी भी मनोकामना पूरी हो।' ऐसी भावना रखने से कवि के नाम का उच्चारण करने में पाठ-कर्ता को कोई हिचक नहीं रहेगी। साथ ही, उस सिद्ध कवि की दिव्यात्मा के शुभाशीष भी उसे मिलेंगे। कवि के नाम को हटाने से **'कृतघ्नता'** का दोष लगेगा और दूसरे की रचना की **'चोरी'** करने का भी पाप होगा। अतः **कवि के नाम को हटाकर** उसकी रचना का पाठ करना उचित नहीं।—सं०]

'धार्मिक शिक्षा विधेयक' की माँग

'...भगवती-स्वरूपा 'चण्डी' के १९९३ के छठे अङ्क में **'धर्म और राजनीति' विधेयक की अपेक्षा 'धार्मिक शिक्षा विधेयक' की आवश्यकता** नामक प्रथम लेख, जहाँ धर्म की सरल व्याख्या एवं आवश्यकता बतलाता है, वहीं राजनीति-पण्डितों के थोथे ज्ञान एवं नारे की भी कलई खोलता है। यह सत्य है कि **'महर्षि अरविन्द'** तथा **'महात्मा गांधी'** के आदर्शों की दुहाई देनेवाले तथा स्वार्थ-वश नाम लेनेवाले नेताओं ने न उनको पढ़ा है, न ही गुना है। **'महात्मा गांधी** ने तो भौतिक पदार्थों का त्याग ही कर दिया था। भारत की दयनीय, वस्त्र-हीन जनता को वस्त्र-हीन देख कर वस्त्र ही त्याग दिया। वस्तुतः वे धार्मिक समाज के प्रति-पोषक थे, परन्तु आज के नेता ......कहने की आवश्यकता नहीं है!

'धार्मिक शिक्षा विधेयक' की माँग वस्तुतः 'चण्डी' का प्रकाश है, जिसे निःसन्देह अब फैलना है। शिक्षा का अर्थ व्यक्ति के व्यवहार में वांछित परिवर्तन से है। हम जैसा व्यक्ति बनाएँगे, वैसा ही **'समाज'** बनेगा—**'राष्ट्र'** बनेगा। यदि हम **'राष्ट्र'** को ही विघटित करना चाहें, तो **'अधार्मिक समाज का निर्माण'** करना क्या पाप नहीं है? राज-सत्ता मद एवं अहङ्कार से भरी होती है और इस मद की मदिरा-पान करनेवालों को क्या कुर्सी के सिवा कुछ दिखाई देगा? उस पर तो उनकी **'दूर-दृष्टि'** एवं **'पक्का इरादा है'**! इन छियालिस वर्षों में उन्होंने अपने अनुरूप सशक्त समाज की रचना कर ही डाली है! देव-भूमि भारत का जो अपमान हो रहा है, उसके लिए 'चण्डी' ने उद्घोष कर दिया है। शासक सँभलें, अन्यथा देवताओं के लिए भगवती अवतरित ही होती हैं।

आशा है, इस प्रकार के समाजोपकारी धार्मिक लेखों की सहायता से आप हम सबका ज्ञान-वर्धन करते रहेंगे। यह हमारे देश की जनता की भ्रान्ति है कि **'समाज-सुधार'** नेता करता है। समाज सुधार तो **'समाज-सुधारक'** साहित्यकार ही करता है। —**श्री सतीशकुमार उपाध्याय, जमुनीपुर, प्रयाग**

श्री भुवनेश्वरी-वन्दना

श्री बलराम दुबे, ७ नवलकिशोर मार्ग, लखनऊ (उ० प्र०)

षोडशि, मणिपुर-धाम-निवासिनि !
कुँअरि, ब्रह्म-चारिणि; विश्वेश्वरि !।
आ निज - धाम बसो अनहत - पुर
हृदय-कमल-दल - वासिनि ईश्वरि !।।

स्मेर - मुखी स्मित - हास-चन्द्रिका ।
चिर - प्रसन्न - वदना भुवनेश्वरि !।।

पूर्ण पुष्पिता नन्दन - वन की,
कल्पद्रुम-लतिके ललितेश्वरि !
भुवन - मोहिनी राज - हंसिनी,
मानसरोवर-वासिनि ईश्वरि !

स्मेर - मुखी स्मित - हास-चन्द्रिका !
चिर - प्रसन्न - वदना भुवनेश्वरि !।।

अपलक छवि कैलाश-शिखर की,
धवल पारदर्शी जल अन्दर ।
हंस निहारे मान - सरोवर,
बिम्ब शिखर अनहत उर भीतर ।।

स्मेर - मुखी स्मित - हास-चन्द्रिका ।
चिर - प्रसन्न - वदना भुवनेश्वरि !।।

उदित बाल - रवि के प्रकाश में,
विकसित मुख अरविन्द मनोहर ।
निरखत अपलक छवि विमुग्ध शिव,
वाम ओर राजित भुवनेश्वरि !

स्मेर - मुखी स्मित - हास-चन्द्रिका ।
चिर - प्रसन्न - वदना भुवनेश्वरि ! ।।

उन्नत पीन - पयोधर द्वय पर,
सन्तति सकल तृषित त्रिपुरेश्वरि !
हरो ताप - त्रय - त्रास तृषाएँ,
भक्त-वत्सले अयि भुवनेश्वरि !

स्मेर - मुखी स्मित - हास-चन्द्रिका ।
चिर - प्रसन्न - वदना भुवनेश्वरि ! ।।

भुक्ति-मुक्ति वर-अभय-दायिनी,
कृपा - दृष्टि तेरी सदयेश्वरि !
अभय-हस्त फिर भी वर-मुद्रा,
धारण करें महा-करुणेश्वरि !।।

स्मेर - मुखी स्मित - हास-चन्द्रिका ।
चिर - प्रसन्न - वदना भुवनेश्वरि !।।

आश्रित सृष्टि सकल जड़-चेतन,
शासित भ्रू-विलास विश्वेश्वरि !
धारण पाश करें अंकुश कर,
शरणागत हित हेतु शिवेश्वरि !।।

स्मेर - मुखी स्मित - हास-चन्द्रिका ।
चिर - प्रसन्न - वदना भुवनेश्वरि !।।

रक्त-वस्त्र सज्जित शृङ्गारित,
श्री-सौभाग्य - दायिनी ईश्वरि !
पूर्ण - कामदा भक्त - वत्सला,
कामधेनु वरदा भुवनेश्वरि !।।

स्मेर - मुखी स्मित - हास-चन्द्रिका ।
चिर - प्रसन्न - वदना भुवनेश्वरि !।।

हृत्-तन्त्री ह्रीं मन्त्र - बीज-मय,
झंकृत मधुरिव मधु-वन मन्दिर ।
चिन्मय उदित अरुण छवि रञ्जित,
अन्तस् ज्योतिर्मय ज्योतीश्वरि !।।

स्मेर - मुखी स्मित - हास-चन्द्रिका ।
चिर - प्रसन्न - वदना भुवनेश्वरि !।।

बसो सतत हृत्-कमल-क्रोड़ मृदु,
तन-मन-प्राण-बुद्धि-चित्त अन्दर ।
वारूँ दृश्य - अदृश्य अहम् की,
सृष्टि-नियति सत्-चित् रूपेश्वरि !।।
वारूँ आत्म - स्वरूप साधना,
तुम पर परम तत्त्व परमेश्वरि !

स्मेर - मुखी स्मित - हास-चन्द्रिका ।
चिर - प्रसन्न - वदना भुवनेश्वरि !।।

ॐ

धन-त्रयोदशी
(धन-तेरस)

•

नरक-चतुर्दशी
अन्न-कूट (गोवर्द्धन-पूजा)
एवं
भ्रातृ-द्वितीया (यम-द्वितीया)
सहित
'दीपावली'
की
पूजा-विधि

रजि० संख्या 32981/57

कार्त्तिक, २०५० वि० - नवम्बर ९३

रजि० संख्या AD~96

'दीपावली' - महोत्सव पर्व - सूची

श्रीधन्वन्तरि जयन्ती

११ नवम्बर, १९९३ (गुरुवार)

नरक चतुर्दशी

१२ नवम्बर, १९९३ (शुक्रवार)

दीपावली, अमावास्या

१३ नवम्बर, १९९३ (शनिवार)

गोवर्धन - पूजा, अन्नकूट

१४ नवम्बर, १९९३ (रविवार)

भईया दूज, यमुना - स्नान

यम - तर्पण

१५ नवम्बर, १९९३ (सोमवार)

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक : ऋतशील शर्मा

चण्डी - कार्यालय, पराशक्ति प्रेस, प्रयाग २११००५